न्यूज़ टाऊन
NEWS TOWN
PUBLISHERS
177/1-A, Ayesha Manzil Pipe Road, Kurla (W),
Mumbai-400 070. • Cell: 09224799971
E-mail: ishtiyaquesaeed@rediffmail.com

कथा–गाँव
(कहानियाँ)

इश्तियाक़ सईद

संकलन : अबदुलबारी एम–के
कम्पोज़िंग : रिज़वान इश्तियाक़
पहला संस्करण : मार्च 2015
पृश्ठ : 144
संख्या : 500
मुल्य : 200 रु
मुद्रक : हुमा ऑफसेट प्रिंटिग ज़ोन
जेकब सर्कल, मुम्बई–11
प्रकाशक : नियुज़ टाऊन पब्लिशरस,
अबदुल्लाह मेन्शन, रुम न. 44,
हरियाना वाला लेन, कुर्ला,
मुम्बई–400 070.

लेखक से संपर्क : 09224799971/09930211461
E-mail : ishtiyaquesaeed@rediffmail.com

समर्पण

अपने गाँव
'कुरेहरा तेज़ सिंह'
के प्रति
जहां की माटी में
मेरे पुरखों की
हड्डियां दफ्न हैं,
और
बयार में उनकी सांसें
आज भी
जिवित हैं।

सुची

अपनी बात

मेरी पहली कहानी 1984 में उर्दू की पत्रिका "रौशने अदब" दिल्ली, में प्रकाशित हुई। तब से अब तक लगातार उर्दू की सभी प्रमुख पत्रिकाओं में कहानियाँ छप रही हैं। मेरी उर्दू कहानियों के दो संग्रह "हलजोता" तथा "हाज़िर ग़ायब" प्रकाशित हो चुके हैं, इसके अतिरिक्त एक नाटक "इन्क़लाब मुरदाबाद" प्रकाशित हुआ है। तीनों ही किताबें महाराश्ट्र, उत्तर प्रदेश तथा बिहार की उर्दू अकादमियों से पुरस्कृत हैं।

तीन वर्ष पहले मुम्बई से बनारस की यात्रा के दौरान किसी स्टेशन पर हिन्दी साहित्य की पत्रिका "हंस" पर नज़र पड़ी, समय बिताने के लिए उसे ख़रीद लिया, जब पढ़ना आरंभ किया तो चकित रह गया क्योंकि उसमें चालिस प्रतिशत शब्द उर्दू के थे। मुझे बे–हद खुशी हुई, क्योंकि मैं स्वंय उर्दु में चालीस प्रतिशत हिन्दी शब्दों का प्रयोग करता हूँ। क्योंकि मेरी कहानियों की पृश्ठ भूमि ज़्यादा तर पुर्वांचल के गाँव–देहात की होती है। इस लिए वहाँ के पात्रों की बोली–ठोली हिन्दी अथवा हिन्दी से मिलती जुलती है। रही बात बीस

प्रतिशत की, तो वह फारसी युक्त शब्द थे उन्हें हिन्दी में अनुवाद कर दिया, और अलग–अलग पत्रिकाओं में डाक द्वारा भेज दिया, जिस में से 'सोच विचार, बयान, समकालीन भारतीय साहित्य और गुफतगू में कहानियाँ प्रकाशित हुईं तो मेरा हौस्ला बुलंद हो गया। फिर क्या था, पाबन्दी के साथ हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं में कहानियाँ भेजने लगा। कहानियॉं जब छपने लगीं तो पाठकों के फोन तथा प्रशंसात्मक पत्र भी आने लगे। फिर इन्हीं पाठकों के आग्रह पर कुछ प्रकाशित और अप्रकाशित कहानियों को एकत्र कर संग्रह का रुप दे दिया।

क्योंकि इस संग्रह में ज़्यादा तर कहानियॉं गॉव की पृष्ठ भूमि में लिखी गईं हैं। इसलिए संग्रह का शिर्षक "कथा–गॉव" रखने का निर्णय लिया।

मेरे इस कथा संग्रह के प्रकाशन में श्री हृदेश मयंक, श्री गंगा राम राजी, श्री अबदुलबारी एम. के, और श्री सिराज फारुक़ी की साहयता शामिल है। मैं सभी का आभार व्यक्त करता हूं तथा पाठकगण से अनुरोध करता हूँ कि मेरी कहानियाँ पढ़ के अपनी प्रतिक्रिया ज़रुर व्यक्ति करें।

धन्यवाद।

• इश्तियाक़ सईद

अपने गाँव को शब्दों में जिलाये रखने की कोशिश है :

कथा–गाँव

इश्तियाक़ सईद के शीघ्र प्रकाशित होने वाले कथा संग्रह 'कथा–गाँव को पढ़ते हुए मैंने गाँव को उस शक्ल में आत्मसात किया जिसे तकरीबन आधी शताब्दी पहले छोड़ आया था। मुम्बई की विभीशिका से जूझते हुए हम जब भी आहत होते हैं अपने गाँव जवार को याद करते हैं। पुरानी स्मृतियाँ घाव पर मरहम का काम करती हैं। अपमानित स्वाभिमान कभी मुट्ठियाँ भींचता है तो कभी संघर्शों के लिए प्रतिबध्द हो जाता है। स्मृतियों को नश्ट करने के अनेक उपक्रम आये दिन इलेक्ट्रानिक मीडिया के माध्यम से होते रहते हैं फिर भी मानव मन उन्ही स्मृतियों की ओर लौटता है जहाँ की धूल–माटी में स्नेहिल बचपन गुज़रा है। तमाम अभाव के बावजूद गाँव की अमराइयां, ताल, पोखर, नदी, नाले, तीज–त्योहार, ईद–बकरीद,शादी–ब्याह, शोक और खुशी के प्रसंग आंखों के सामने अनायास तैर जाते हैं। शायद इन्हीं कारणों से कहा जाता है कि हर लेखक के हिस्से का एक आकाश होता है वहाँ के पेड़–पौधे और मिट्टी की अलग खुश्बू होती है, जो आजीवन बेचैन करती है। इश्तियाक़ के हिस्से की ज़मीन और उसकी पीड़ा मुम्बई के तमाम वैभवों के बीच भी उन्हें बेचैन करती है। इस कथा–गाँव की तकरीबन सभी कहानियाँ उसी बेचैनी और पीड़ा की अभिव्यक्ति हैं। इन कहानियों से गुज़रना आधी सदी पीछे के पूर्वांचल के गाँवों की व्यथा से गुज़रना है। भयानक ग़रीबी, बेकारी व

बदहाली के शिकार ग्रामवासी किस तरह जीवन यापन करते थे। ये कहानियाँ बखूबी बयान करती हैं।

आज का समय पहले की अपेक्षा तेजी से छलाँग लगा रहा है। आर्थिक उदारीकरण ने एक तरह के नए उपभोक्ता वादी समाज को पैदा कर दिया है। नित नए प्रलोभनों के चक्कर में फँसा आदमी कहीं का नहीं रह गया है, न घर का न घाट का। ग्राम्य जीवन और शहरी जीवन में यदि कोई फर्क है तो वह संसाधनों का। शहर धीरे–धीरे गाँवों में घुस आया है। अब गाँवों में न जाँत–मुसर है न बिरहा न नौटंकी हर ओर फिल्मी धुनों पर थिरकते लोग तनिक भी गाँव के नहीं लगेंगे। उखड़ी जड़ों के लोग जो महानगरों में रहते हैं अब उन्हीं की स्मृतियों में सुरक्षित हैं। वे गाँव जहाँ धुन टेरते चरवाहे थे आम व महुआ बीनतीं बालिकाएँ थीं, तीज–त्योहारों पर मनुहार करती सुहागिनें थीं। पनघट व चौरा पर माथा टेकती बुजुर्ग व युवा स्त्रियाँ थीं। सच तो ये है कि पुराने औजारों को नये मल्टीनेशनल औजारों ने रिप्लेस कर दिया है। शायद यही कारण है कि आज का युवा गाँव में रहते हुए भी पुरानी स्थितियों से अवगत नहीं हैं। दादियों और नानियों के पास विरासत में मिले कुछ गीत मिल जाऐं तो यह भी अनूठा ही होगा। किस्से कहानियों व लोक गीतों वाला गाँव जाने कैसे इश्तियाक़ के पास सुरक्षित है। कथा–गाँव इस माइने में आज की कहानियों से अलग अवश्य है। जिन अनुभवों को इन कहानियों में उकेरा गया है वे बेजोड़ हैं। इन कहानियों को पढ़ते हुए कई लोग बिदक भी सकते हैं कि आज इनका क्या प्रयोजन। साहित्य का एक काम यह भी है कि वह अपने समाजों का भी लेखा जोखा रखता है, उनके बनते बिगड़ते स्वरुप पर नज़र रखता है।, प्रेमचंद को पढ़ते हुए तत्कालीन ग्राम्य जीवन के जो चित्र मिलते हैं उन्हीं के आधार पर उस समय की राजनीतिक प्रस्थितियों का भी मूल्यांकन किया जाता है। 'पूस की रात, सवा सेर गेहूं या अमर कृति गोदान के पात्र अपने समय की स्थितियों को ज़बान देते दिखलाई पड़ते हैं।

यह सच है कि आज लोग कहानी में आज के समय के सत्य को तलाशेंगे। नई भाशा नये कथन की बात आज धड़ल्ले

से की जाती है। कथन का प्रचलन भी ग़ायब होता जा रहा है। ज्यों ज्यों मनुश्य की इच्छाओं, आकांक्षाओं को पर लगेंगे त्यों त्यों भाशा उछाल मारती हुई अगली शताब्दियों की ओर कूंच करेगी। पर अतीत का क्या जिसे भूल जाने के लिए साम्राज्यवादी ताकतें भी जोर लगा रही हैं। क्या हम अतीत को भूल सकते हैं, शायद साहित्य में नही भुला सकते। स्मृतियों को कैसे काट फेकेंगे ?अपने जन्म स्थान वहाँ की जलवायु, वहाँ की प्रकृति से कैसे नाता तोड़ सकते हैं और इन सबसे अधिक अपने पुरखों, दादा दादियों को हम जहाँ दफन कर आये हैं क्या उनकी स्मृतियों को भुला पायेंगे, शायद नही। उन्हीं स्मृतियों की मीनार पर कथा–गाँव की कहानियाँ खड़ी की गई हैं।

कुल मिलाकर इश्तियाक़ सईद कथा–गाँव में उन्हीं कहानियों को लाते हैं जो गाँवों के जीवन व उसके परिवेश से निकलती हैं, हलाकि अब इस तरह की कहानियों का प्रचलन नहीं है फिर भी कथा में ही सही गाँव को ज़िन्दा रखने का उनका यह प्रयास काबिले तारफि है। ढेर सारा शब्द संसार ढेर सारी अनुभूतियां समय के प्रवाह में मटियामेट हो रही हैं। आने वाले दौर में न तो शब्द बचेंगे न ही लोक की कहानियाँ। शायद इश्तियाक़ ने इसे जान लिया है। उनके इस उपक्रम के लिए बधाई दिया जाना चाहिए। इश्तियाक़ सईद मीडिया के क्षेत्र के कार्यकर्ता भी हैं इसलिए वे नये संदर्भ व नई जरिकताओं से वाक़िफ भी हैं। उम्मीद है कि उनकी ये कहानियाँ उनके गाँव जवार व अंचल को साहित्य की दुनिया में बहुत दिनों तक आबाद रखेंगी।

ढेर सारी शुभकानाएँ।

हृदयेश मयंक
संपादक 'चिंतन दिशा'(मुम्बई)

इश्तियाक़ सईद पिछली शताब्दी की आठवें दसक के उन कहानीकारों की नस्ल से संबंधित हैं जिन्होंने अपनी कहानियों का ख़मीर ज़िन्दगी की कशाकश से उठाया है। इश्तियाक़ अपनी कहानियों में समाजी और सियासी विषय को साहितिक सौंदर्य के साथ प्रस्तुत करते हैं। वह सर्वजनिक विवेक को व्यत्कि की साइकी का अंश मानते हैं। इसलिये इनकी कहानियों को पढ़ते हुए ऐसा महसूस होता है मानो हम अपनी ही खिड़की से ज़िन्दगी का नज़ारा कर रहे हों।

साजिद रशीद

फिरंगी

दादर–गोरखपूर एक्सप्रेस जिस समय बनारस के हद में दाख़िल हुई थी, में अपरबर्थ पर पड़ा गहरी निद्रा में लीन था। भला हो मेरे एक हमसफर का कि उसने मुझे झकझोर के जगाया।
"भाई साहब, अब उठ भी जाइए 'मग़रिब' का वक्त हुआ चाहता है।"
"आं" मैं झट चौंक के उठ बैठा और जेब से मोबाईल फोन निकाल के समय देखा। पाँच बज के दस मिनट हो रहे थे। इस बारे में मैं अपने हमसफर से कुछ कहता इस से पहले निकट के किसी मसजिद से अज़ान की सदा बुलंद हुई और मैं झट–पट बर्थ से नीचे उतर आया। खिड़की से बाहर देखा तो संध्या धीरे–धीरे रात में तबदील होरही थी, जब कि ट्रेन किसी बड़े स्टेशन के आउटर पर खड़ी थी। मुझे अपने मोबाईल–वाच पर कुछ संदेह हुआ इस कारण मैंने अपने हमसफर से समय मालूम किया। उसने अपनी कलाई पर बंधी घड़ी पर नज़र डालते हुए कहा। "सवा पाँच बज चुके हैं"
"लेकिन मग़रिब का वक्त तो सवा छे के क़रीब होता है न?"
"भाई साहब शायद आप भूल रहे हैं कि इस वक्त हम मुम्बई में नही

बल्कि बनारस में हैं।''

''क्या ! बनारस आ गया ?''मैं चौंक पड़ा।

''जी........यहाँ के वक्त और मुम्बई के वक्त में लग–भग पचपन मिनट का फ़र्क है''

इस बीच ट्रेन रेंगने लगी और बनारस शहर के लक्षण दिखाई देने लगे। मैं झट–पट अपना सामान समेटने लगा, चादर तह करके बैग में ठूंसा फिर सीट के नीचे से सूटकेस खींच के बाहर निकाला। मेरी इस क्रिया को देख कर मेरा हमसफर मुझ से पूछा।

''बनारस उतरेंगे ?''

''जी '' मैंने संक्षिप्त उत्तर दिया।

''भला बताईए, आपको बनारस उतरना है फिर भी घोड़े बेचके सोए पड़े थे, अगर मैं न जगाता तो.......?''

''तो......परेशानी बढ़ जाती।''

''परेशानी सिर्फ बढ़ती नही बल्कि नानी याद आजाती.........आपके चहरे के तासुरात और बॉडी लेंगवेज़ से साफ पता चलता है कि पहली बार या फिर बरसों बाद यहां आना हो रहा है ?''

''जी......मैं क़रीबन सोलह साल बाद इस तरफ़ का रुख़ कर रहा हूँ। उस वक्त भी चार–छे दिनों ही के लिए आया था, गर्मियों के दिन थे, लू के झक्कड़ों और जिस्म को झुलसा देने वाली गर्मी से तंग होकर लौट गया था, ख़ैर अबकि जाड़ों में आया हूँ''

''गर्मियों के दिन तो ग़नीमत हैं, भाई साहब, आदमी कमरे में पंखा झलते या पेड़ों की छाँव तले राहत पा लेता है, लेकिन यह दिसम्बर की सर्दी......अल्लाह की पनाह ! शुक्र है अल्लाह का कि हम अे–सी कोच में हैं, यहां सर्दी का अहसास बिलकुल नही है। ज़रा जनरल डब्बों या स्लीपर कोच में जाके देखिए क्या हाल है उन बेचारों का।''

इसी बीच ट्रेन स्टेशन पर पहुँच गई। लोग–बाग उतरने के लिए दरवाज़े पर भीड़ लगा दिए। मेरे हमसफर ने लाख मना करने पर भी सूटकेस उठा लिया और बोगी से नीचे तक ले आया। यहाँ बहोत से यात्री उतरे थे। ये कहना उचित होगा कि आधी से अधिक ट्रेन ख़ाली हो गई थी। प्लेटफार्म पर यात्रियों का हुजूम सा दिखाई पड़ता था। कुछ यात्री दांए तो कुछ बांए ओर जा रहे थे, इस कारण

मुझे ये समझने में कठिनाई हो रही थी कि स्टेशन से बाहर जाने के लिए किस दिशा में जाया जाए। मेरा हमसफर मेरी परेशानी ताड़ गया और बोला।
"भाई साहब, उलझने की कोई ज़रुरत नही, बस बताईये आप को जाना कहां है ?"
"स्टेशन से बाहर"
" ओहो......ये तो मैं भी जान रहा हूं.....आप ये बताईए कि शहर ही में जाना है या और कहीं ?"
"आज़म गढ़ वाली बस पकड़नी है।"
"तो ये कहिए न कि आप को आज़म गढ़ जाना है।"
"नही नही......मुझे आज़म गढ़ नही, देवगाँव जाना है।"
पास ही खड़ा एक युवा यात्री जो हमारी बातें सुन रहा था झट बोल पड़ा।
"चाचा जी, हम के भी अजमे गढ़ वाली बस से जाए के है, आप के देवगाँव तक जाए के है और हम तनिक पहिले 'चेवार' पेट्रोल टंकी पर उतरेंगे।"
मेरा हमसफर खुश हो बोला। "लिजिए भाई साहब, आप का मसला हल हो गया।"
फिर उस युवा यात्री की रहनुमाई में बड़ी आसानी से रोडवेज़ पहुँच गया और इस से भी कहीं अधिक आसानी से बस में सवार हो गया।

बस तेज़ गति से देढ़ घन्टा तक चलती रही, जब देवगाँव पहुँची तो साढ़े सात बज रहे थे, बाज़ार में सन्नाटा था। हलवाईयों की दुकानों के अतरिक्त उन दुकानों पर भी कुछ हलचल थी जहां नीचे दुकान और उपर मकान थे। मैं एक हलवाई की दुकान पर पहुँचा, वहाँ चार लोग बैठे चाय पी रहे थे। इससे पहले कि मैं चाय के लिए कहता दुकानदार झट केतली से कुलल्हड़ में चाय उँडेल के मेरी ओर बढ़ा दिया। मैं कुलल्हड़ थामते हुए दुकानदार से पूछा।
"भैया.......मेहनाज–पुर जाने के लिए कोई......."
मेरा वाक्य पुर्ण भी न होने पाया था कि वहाँ बैठे लोगों में से एक व्यक्ति बीच ही में बोल पड़ा।
"सात वाली बस तो चली गई। आठ वाली दस रोज से औतय नाही, खाजा साहब के उरुस में अजमेर गई है, भैया बस, अब रोडवेज

वाली का सहारा है। जवन 'आजम गढ़' से 'पकड़ी' चलत है।"
"कितने बजे तक आएगी ?"
"कौनो टेम टेबल ठीक नाही, अपने मन का है। जब न तब आए जाए।"
"आप के जाए के कहां है ?" दुकानदार ने पूछा।
"ईटैली मोड"
बैठ जा, घंटा सवा घंटा में बसिया आई .....ई लोगन के भी वही से जाए के है।"
मैं चुपचाप बैंच पर बैठ गया, इसी बीच मेरे मोबाईल का बज़र बजने लगा, मेरे बेटे जुनेद का फोन था, वह जानना चाह रहा था कि मैं अब तक गाँव पहुँचा भी या नही। मैं उसे ट्रेन के विलंभ से बनारस पहुँचने तथा बनारस से देवगाँव तक आने का किस्सा बयाँ कर ही रहा था कि फोन डिसकनेक्ट होगया। देखा तो पता चला कि बैटरी डिसचार्ज हुई है। झट बैटरी चार्ज करने का ख़्याल आया और मैं बे-ताबी से अन्धेरे में इधर-उधर ताकने लगा। मालूम होता है यहाँ इलेक्ट्रीक नही है, यदि होती तो अन्धेरा क्यों होता! फिर भी मैंने दुकानदार से पुछ ही लिया।
"भाई साहब.......ज़रा मोबाईल चार्ज़ करना था।"
"देखत तो हो लाईन नही है।" दुकानदार खिसिया के बोला।
"का है न आजकल दिन वाली लाईन है.......आठ बजे से चार बजे तक!"
वहाँ बैठे एक सज्जन ने मेरी जानकारी में बढ़ोतरी की। फिर वहाँ मौजूद सभी लोग बिजली को विशय बनाकर आपस में सियासी बहस में उलझ पड़े। फिर महंगाई अथवा क्रपशन को भी मुद्दा बनाया, लेकिन नतीजा वही ढ़ाक के तीन पात। अलबत समय के बीतने का आभास क़तई न हुआ।

क़रीब पौने नौ बजे बस आई, जिस में कुल सात यात्री थे। ड्राईवर, कंडक्टर और खलासी तीनों बस से उतर आए और हलवाई की भट्ठी जो लगभग बुझ चुकी थी। उस पर अपने हाथों को सेंकने लगे, इसी बीच दुकानदार ने उन्हें कुलल्हड़ में चाय दिया। वह लोग चाय पी ही रहे थे कि मैं अपना सूटकेस और बेग उठाकर बस में

सवार हो गया। थोड़ी देर बाद बस जब चली तो मेरी सोचें अतीत की ओर चल पड़ीं।

उस समय मेरी आयू चार साल रही होगी जब मैं अपने मात–पिता के संग मुम्बई चला गया था। मेरा लालन–पालन, शिक्षा–दिक्षा मुम्बई ही में हुई। उन दिनों गर्मी की छुट्टियाँ बिताने गाँव अवश्य आता। आमों के बाग़, खेतों, पगडंडियों, तालाबों तथा भोले–भाले देहातियों से मुझे बेहद लगाव था। पिता जी ने जब कारोबार की जिम्मेवारी मुझे सौंपी, मेरा वजूद लोभ व लिप्सा के मायाजाल में उलझ गया। दादा जी की मौत के पश्चात पिता जी गाँव में ही रहने लगे थे। मैं उन्हें रुपिया–पैसा समय–समय से भेजता रहता लेकिन उनसे भेंट करने हेतू कभी गाँव न आ सका, यहाँ तक कि वह मेरी प्रतीक्षा करते–करते परलोक सिधारे। उनकी मौत की सूचना टेलीग्राम द्वारा प्राप्त हुई थी। फिर लोक–लाज के भय से कारोबार छोड़ गाँव आना पड़ा था। उनके जनाज़े को कंधा तो नही देसका बस कब्र की ज़ियारत पर ही संतुश्टि करना पड़ी। इसके बाद चहारम तक ठहरा रहा फिर गर्मी का बहाना कर वहां से चलता बना। इस बात को सोलह वर्श बीत चुके हैं। अब मेरा बेटा जुनेद ने कारोबार संभाल लिया है फिर भी मैं स्वयं को कारोबार के मायाजाल से निकाल नही पा रहा हूं। कायदानुसार मुझे भी पिता जी के देहांत के बाद गाँव आकर बस जाना चाहिये था। पुर्खों की काफ़ी ज़मीनें हैं, आमों के बाग़ हैं, इन सब की देख–रेख मेरे लिए अनिवार्य थी। मगर करता क्या ! मैं तो अपने जमे–जँमाये कारोबार से इश्क़ की हद तक चिमटा हुआ था, फिर मुम्बई की आलीशान तथा ऐश की ज़िन्दगी छोड़ गाँव में बसना मेरे निकट बे–वकूफी थी .... लेकिन इधर कुछ दिनों से न जाने क्यों मेरे मस्तिश्क में गाँव अंगड़ाई लेने लगा है। वहां की यादें मेरे विवेक पर बोझ बनती जा रही हैं। उठते–बैठते, जागते–सोते बस गाँव ही की कल्पना मेरे बोध पर रौशन रहती है। पहले पहल तो मैं इसे नॉस्टलजिया समझ के दरगुज़र करता रहा, फिर अचानक ऐसा आभास होने लगा जैसे कोई अन–देखी शक्ति मुझे गाँव की ओर खींच रही है। इस कारण मेरे भीतर एक अजीब प्रकार की बेचैनी फैल जाती, जी चाहने

लगता कि उड़ के गाँव पहुँच जाऊं......पगडंडियों पर दौड़ लगाऊं ... खेतों में मटरगश्ती करुँ तथा नदी और तालाबों में डुबकियां लगाऊं कृ पेड़ों पर चढूं। पत्नी से इन बातों की चर्चा करता तो वह हंसी उड़ाते हुए कहती।

"इसे ही सठियाना कहते हैं, अब मान लेना चाहिए कि आप पर बुढ़ापा तारी हो चुका है, क्योंकि मैं ने सुना है आदमी जब बूढ़ा हो जाता है तो उसे जन्मभूमि अपनी ओर खींचती है। मुमकिन है आप का आख़री वक्त क़रीब हो। इसलिए आपको गाँव जाने के बजाय हज का इरादा कर लेना चाहिए।"

फिर एक दिन न चाहते हुए भी छत्रपति शिवाजी टरमिनस पहुँच गया और दो दिन बाद का दादर–गोरखपुर एक्सप्रेस से बनारस के लिए थर्ड ऐ–सी का टिकट रिज़र्व करवा लिया।

"आप इटैली मोड़ उतरेंगे न ?"

"आं" कंडक्टर की आवाज़ पर मैं चौंक उठा।

"आ गया इटैली मोड ?"

"हां भाई आ गया.....जल्दी से उतर जाइए"

कंडेक्टर की साहयता से मैं ने सूटकेस और बेग नीचे उतारा, यहां मेरे अतिरिक्त दूसरा कोई यात्री नही उतरा था। अलबत एक आदमी बस में सवार जरुर हुआ था, फिर बस चल पड़ी थी।

बस तो चली गई, लेकिन मैं स्वयं को बे–बस और असहाय महसूस करने लगा था, क्योंकि मेरे चारों ओर गहरा अन्धकार छाया हुआ था, कहीं से प्रकाश की एक किरन भी दिखाई नही दे रही थी। जबकि इटैली मोड़ गत सोलह वर्शों में काफी तरक्की कर गया था। अब मुझे यहाँ कई दो मंज़िला मकान दिखई दे रहे थे, दुकानों की संख्या भी अधिक हो गई थी। सोलह वर्श पहले कुल पांच–सात दुकानें रही होंगी। कुछ देर इस घटाटोप अन्धकार में ये आशा लिए खड़ा रहा कि शायद कोई साहयता मिल जाए, लेकिन यहां दो एक कुत्तों के कोई मानव जाति दिखई नही दिया। मुझे अब कुछ–कुछ सर्दी भी मालूम होने लगी थी जबकि मैंने इनर के अतिरिक्त हाफ स्वेटर तथा गर्म कोट पहन रखा था, मंकी केप के उपर मफलर भी लपेटे हुए था। जब साहयता की कोई सूरत नज़र न आई तो

मजबूरन बेग को कंधे पर लटकाया और सूटकेस उठाकर धीरे—धीरे 'मौधा' वाली सड़क पर चल पड़ा। दुकानों का सिलसिला जैसे ही समाप्त हुआ सड़क की दोनों पटरियों पर गेहूं, अरहर और सरसों के खेतों का सिलसिला आरम्भ हो गया। पास ही कहीं से सियारों की हुवाँस तथा कुत्तों के भोंकने की आवाज़ें आने लगी थीं। मैं सोचने लगा कुत्तों ने कहीं मुझे घेर लिया तो......? शायद मेरी बोटी—बोटी नोच डालें। इसी बीच पास के खेत से दो नील गायें दौड़ती हुई सड़क पार कर उस ओर के खेतों में लुप्त हो गयीं......यह देख मेरा तो खून ही सूख गया। नील गायों से मुझे बड़ा डर लगता है। मैंने इनके बारे में अपने दादा से कई क़िस्से सुन रखे हैं। नील गाय जिसे देहाती बोली में 'घड़रोज' कहते हैं। घड़रोज आदमी को अकेला पाकर उस पर आक्रमण कर देती हैं। इन पर लाठी—डन्डे का कोई असर नही होता। यह केवल शोर और धूल से घबराती हैं।

मैं चलते—चलते जब गांगी नदी के पुल पर आगया तो ऐसा महसूस होने लगा मानो मेरे पैरों को काठ मार गया हो, सांसें अलग फूलने लगी थीं, सूटकेस उठाए—उठाए दोनों हाथ भी सिथिल हो चुके थे। कारणवश बेग और सूटकेस वहीं रख दिया और हेंगा चले बैल की भांति हांफने लगा। जिस स्थान पर मैं खड़ा था वहीं से एक ढ़लान नुमा पगडन्डी नदी की ओर नीचे खेतों में उतरती थी, मुझे याद आया कि यह रास्ता धोबियों के घाट तक जाता है, क्योकि मैं बचपन में इसी रास्ते नदी पार 'नेवादा' जुमा की नमाज़ अदा करने जाया करता था। मेरी सोचें अभी इस रास्ते से नीचे उतरना चाह ही रही थी कि अचानक मेरी दृश्टि नदी की ओर से आते एक व्यक्ति पर पड़ी जो इस कड़ाके के जाड़े में भी केवल लुंगी और बन्डी पहने हुए था। पहले तो मैं चौंक पड़ा, फिर ध्यान आया कि कोई नशेड़ी—गजेड़ी होगा, ऐसे लोगों को नशे के झोंक में जाड़ा—पाला का कहां असर होता है। इसी दम मुझे मिट्ठू चच्चा का ध्यान आगया, जिन का किसी कारण दिमाग़ चल गया था और वह गर्मी तो गर्मी जाड़ों में भी बिना कपड़ों के रात—रात भर सीवान में भटकते रहते थे और रह—रह के "भगवान दादा संभारा" की बांग लगाया करते थे।

"ग़फ़ूर भैया सलाम......"एक भारी स्वर मेरे कानों से टकराया। मैं मुड़ के देखा तो चकित रह गया, नदी की ओर से आने वाला व्यक्ति अब पुल के पास की ढ़लानी पगडन्डी की चढ़ाई चढ़ता हुआ हाथ से कुछ संकेत कर रहा था। मैं सोचने लगा कि यह व्यक्ति कौन है जो मुझे नाम से जानता पहचानता है, फिर इस अन्ध्यारी रात में! इस दौरान वह मेरे निकट आ गया।
"बड़ी देर करदिये आवे में, जानत हो हम संझा से तुम्हार बाट जोह रहे हैं" कहते हुए बेग उठा के कंधे पर टांग लिया और सूटकेस सिर पर रख के बोला। "अब चलबो कि यहीं डेरा डारे का मन है"
यह सोचके कि यह अवश्य कोई मेरा जानने वाला है जिसको मैं पहचानने में अस्मर्थ हूँ, उसके पीछे–पीछे चल पड़ा। चलते–चलते उसने कहा।
"ग़फ़ूर भैया हमरे कारन तोके बड़ी परसानी भई, एकरे खातिर माफी चाहत हैं"
"नही–नही, माफी की क्या बात है, असल में ट्रेन करीब तीन घंटे देरी से बनारस पहुँची, इसी लिए........ वर्ना दिन रहते घर पहुंच आते"
"दिन रहते आजाते तो हम से भेंट कैसे होती ?" फिर चलते–चलते उल–जलूल बातें करता रहा जो मेरे पल्ले पड़ी ही नही, बस मैं हां–हां करता रहा, इसी बीच मैंने उससे विनम्रता पुर्वक कहा।
"देखो, तुम से क्या छुपाना......असल में मैं तुम्हें पहचान नही पाया।"
"का कहे! हमके नही पहचान पाए.......अरे भैया हम हैं फिरंगी, तुम्हरे लड़कपन के साथी।"
"फिरंगी तुम !!" और यकायक फिरंगी से जुड़ी सभी यादें मेरे स्मृति के टेबलेट पर फाईल दर फाईल खुलने लगीं।

फिरंगी मेरे लड़कपन का साथी था, वह था तो जात का कहार, लेकिन था एकदम गोरा–चिट्टा, अंग्रेजों की भांति, इसी कारण उसे लोग फिरंगी कहते थे। इस सम्बन्ध से गाँव में यह किस्सा मशहूर था कि अंग्रेज़ों के ज़माने में इसकी लकड़–दादी किसी अंग्रेज़ हाकिम के यहां पानी भरने का काम किया करती थी, जबकि दादा दूसरे कहारों के साथ मिलके पालकी ढोया करता था।

दादी थी तो सांवली लेकिन नैन–नक्श तीखे थे, हाकिम का उस पर दिल आ गया और उसने उसे अपनी उप–पत्नी बना लिया था, उससे दो औलादें हूईं....एक पुत्र, एक पुत्री.....पुत्री कुछ दिनों बाद गुज़र गई तथा पुत्र का वंश आगे बढ़ता रहा..... इनके खून का मैल साफ होने में तीन नस्लें नश्ट हूईं, तब कहीं जाके चौथी नस्ल में फिरंगी के रुप में उस अंग्रेज़ हाकिम का खून उजागर हूआ।

फिरंगी एक जगा अचानक ठहर गया और सिर से सूटकेस उतार के भूमि पर धरते हुए विनती करते हुए बोला। "भैया गाँव आ गया, यहां से आगे अब हम नही जा पायेंगे"
फिरंगी की वाणी सुन मुझे ऐसा अनुभूत हुआ मानो स्मृति के टेबलेट की बैटरी अचानक डिसचार्ज हो गई तथा टेबलेट टर्न ऑफ हो गया हो। चौंक कर मैंने इधर–उधर देखा तो पता चला कि हम वहां पहुँच आए हैं जहाँ से गाँव का सिलसिला आरम्भ होतां है। फिर मैंने उससे नम्रता पूरवक कहा।
"फिरंगी यह क्या ! तुम मुझे रस्ते ही में छोड़े जा रहे हो ?"मेरे इस प्रश्न पर उसने हाथों को जोड़ लिए। "भैया, आगे हम जा नही पाएंगे।"
"क्यों ?"
"मजबूरी है.....इस बखत हम जल्दी में हैं, कल फिर भेंट करेंगे तो बताएंगे" कहते हुए पास के सरकन्डों के जंगल में लुप्त हो गया। फिर मैं किसी तरह सूटकेस और बेग उठाया और धीरे–धीरे चल पड़ा।

गाँव में सोता पड़ चुका था। दो एक जगहों पर अलाव जलने के आसार दिखाई पड़ रहे थे, और अलाव के समीप ठंड से ठिठुरते कुत्ते दुबके पड़े थे। तात्पर्य यह कि सारा गाँव सांय–सांय कर रहा था। अलवा इसके गाँव की रुप–रेखा भी काफी बदल गई थी, कच्चे मकान अपना अस्तित्व खो चुके थे, इनके स्थान पर उंची–उंची इमारतें खड़ी थीं, इस कारण गाँव में प्रवेश करने वाला मुख्य रास्ता भी अपनी पहचान खो चुका था। यही सब देखने में मेरा

पैर भूमि पे सोये हुए एक कुत्ते की पोंछ पर पड़ गया, कुत्ता कूं–कूं करता उठा और बे–तहाशा भौंकने लगा। मारे घबराहट के मेरे मुख से अजीब प्रकार की आवाज़ें निकलने लगीं। ये आवाज़ें सुन के पास के मकान से एक बूढ़ा व्यक्ति हाथ में सर्च लाईट लिए बाहर आया और डपट के पूछा। "के है ?"

"दादा हम ग़फूर.......हम को ज़हूर के घर जाना है"

मैं घिघियाते हुए बोला।

"ओहो.....तो इहाँ कैसे चले आए, रस्ता तो वहीं बंस्वारी के पास से रहा.......चलो कौनो बात नही, अब अैसन करो कि खेत के दांड़े–दांड़े सीधे चले जाओ, गोड़ाने में पहुंच जाओगे,फिर वही पैंड़ा धर के आगे बढ़ जाना।"

"मुझे बड़ा डर लग रहा है दादा" मैंने सहमे हुए स्वर में कहां

"डर ! कैसन डर......अरे मरद बच्चा होके डेराते हो......चलो हमरे साथ, हम पहुंचा आते हैं।"

फिर वह ओसारे में जाके अपने क़द बराबर लाठी लिए बाहर आया और लल्कार के कहा।

"आओ चलो"

वह लाठी भूमि पर पटकते हुए इस अन्दाज़ से चलने लगा मानो वह किसी सेना का कमान्डर हो। रास्ते भर उसने मुझ से कोई बात नही की, न ही मैंने कुछ कहा। एक मकान के समीप पहुँच के उसने गोहार लगाई।

"ज़हूर........ए ज़हूर, सो गये का"

"के है.........उस्ताद हो का ?"

भीतर से एक लरज़ती सी आवाज़ उभरी।

"हां भाई, हमही हैं.....देखो तो के आया है।"

ज़हूर चाचा शरीर पर कम्बल लपेटे, हाथ में लालटेन थामे बाहर आए और मेरे चहरे की ओर लालटेन करके पूछा।

"के है ?"

"हम हैं चाचा ग़फूर, बम्बई से आए हैं"

मेरा नाम सुनते ही उन्हों ने झट लालटेन ज़मीन पर रख दिया और बड़े ही वालिहाना अन्दाज़ में मुझे अपनी छाती से भींच लिया।

"अल्लाह का शुक्र है बेटा, तुम आए तो, मैं तो निराश हो चुका था कि तुम से भेंट कीए बिना दुनिया से चला जाऊँगा।"
"ऐसा क्यों कहते हैं चाचा, इन्शाअल्लाह, आप अभी बहुत जीएंगे"
"अरे बेटा, मौत और हयात पर किस का कौन बस ! आज मरे कल दूसरा दिन ! कहो उस्ताद है न यही बात ?"
"हाँ भाई........आजकल जवान–जवान पट्ठा चट–पट में मर जात हैं, हमाशुमा का तो उमिर होए गई है.... वैसे ज़हूर हम इनके पहचान नही पाए ?"
"अरे भाई, तोहरे परम मित्र के बेटवा हैं"
"का ! .....इस्लाम का......?"
"हां ! बड़का बेटवा ग़फूर"
"वाह बेटा" कहते हुए उस बुढ़े ने मुझे अपनी बाँहो में कस लिया, इस बीच चाचा के दोनों बेटे फ़ारुक़ और अंजुम भी अपने–अपने कमरों से निकल आए और बारी–बारी मुझे सलाम करके गले मिले। फिर फ़ारुक़ सूटकेस उठाते हुए बोला।
"भैया, भीतर आ जाइए, ओस पड़ रही है, आज ठंड भी कुछ बढ़ गई है, कहीं पाला न मार दे।"
भीतर जाने से पहले मैंने उस बूढ़े के आगे हाथ जोड़ के कहा।
"दादा मेरे कारण आपको इतनी ठंड में कश्ट उठाना पड़ा।"
वह मेरे जुड़े हाथों को अलग करते हुए बोला।
"पगला गए हो का, घर के लड़के हो, जो वहीं बता देते कि इस्लाम के बेटा हो तो हम इहां ले आते का, अपने यहां रोक लेते........वैसे, इस्लाम के बेटा हो जान के जी गद–गद हो गवा, अच्छा चलो अब आराम करो, रात ढेर हो गई है, हम भी चलें....हां, भोर में तुम से मिलेंगे और तुम्हरी खबर भी लेंगे।"
यह वाक्य सुन चाचा हँसने लगे और वह बूढ़ा भूमि पर लाठी पटकता जिस दिशा से आया था, धीरे–धीरे चलता चला गया।

जब मैं भीतर दालान में आया तो मेरे लिए बिस्तर लग चुका था तथा घर की औरतें भी जाग चुकी थीं। क्योंकि भीतर से बर्तनों के आपस में टकराने की आवाज़ें आरही थीं, थोड़ी ही देर में भोजन

भी परोस दिया गया। भूख तो लगी ही थी तिस पर देशी व्यनजन की महक ने मेरी भूक को अधिक बढ़ा दिया था, अतः मैं ने डट कर भोजन किया और लिहाफ में दुबक गया। चाचा मेरी चारपाई पर बैठते हुए बोले।

''बेटा अबकि तो तूं इतनी रात में आ गए, बकिन दुबारा इ गलती न करना।''

''क्या करें चाचा, ट्रेन जो लेट होगई ....''

''अरे ! जब आही रहे थे तो कम से कम फोन–फान कर दिए होते, फ़ारुक़ नही तो अंजुम तुम्हें उतारने बनारस चला जाता.....जानते हो इतनी रात को आना कितना जोखिम का काम है ?''

''हां भैया......इतनी रात के तो हम लोगन भी इटैली से अकेले आवे की हिम्मत नही जुटा पाते''

फारुक ने सरसराते स्वर में कहा।

''हिम्मत तो मुझ में भी नही थी, लेकिन मरता क्या न करता !... अल्लाह–अल्लाह करते किसी तरह गांगी नदी के पुल तक आया, फिर हिम्मत और ताकत दोनों जवाब दे गए। वो तो भला हो फिरंगी का, जाने कहाँ से उधर आ निकला और मेरा सामान उठा के गाँव की चौहद्दी तक ले आया''

फिरंगी का नाम सुनते ही सभी के चहरे ऐसे सांय–सांय करने लगे जैसे 'भिवंडी' में बिजली गुल होने पर पावरलूमों की खटर–पटर का शोर अचानक शांत होजाता है और सारा शहर भांय–भांय करने लगता है। कुछ देर बाद चाचा ने शान्ती भंग की।

''ग़फूर !''

''हां चाचा''

''बेटा, थके हो सो जाओ, सवेरे बतियाएंगे'' और उन्होने लालटेन बुझा दी।

सवेरे नाश्ते के बाद अंजुम ने कहा। ''भैया, चलो खेत की ओर घूम आएँ''

''हां! खेतों की तरफ तो जाना ही है लेकिन पहले ज़रा फिरंगी को बुलवालो, उसे कुछ दे दें, बेचारे ने रात बड़ा साथ दिया।''

"हां–हां, उसे भी बुलवा लेंगे........पहले आप चलिए तो......"

जैसे ही हम घर से आगे बढ़े, मुझे एक कुवाँ नज़र आया, जिस पर घास–फूस तथा कंटीली झाड़ियाँ जमी हुई थीं। मैं लपक के कुएँ की मुन्डीर पर हाथ धर भीतर झाँकने लगा। मेरी इस क्रिया पर अंजुम झट मेरी बांह पकड़ कर खींच लिया।
"ये क्या कर रहे हो भैया, कुएँ में कई ज़हरीले साँप हैं, लोग–बाग इस ओर से जाते हुए भी डरते हैं।"
वाक़ई, कुएँ में साँप रहे होंगे, क्योंकि मुन्डीर पर जैसे ही मैंने हाथ धरा था, फूं–फूं की सी आवाज़ें सुनाई दी थीं। मैं आगे बढ़ के हसरत भरी निगाहों से कुएँ की ओर देखते हूए बोला।
"अंजुम, हम बचपन में इसी कुएँ पर नहाया करते थे, गर्मियों में पानी बड़ा ठन्डा होता था, क्योंकि यहां एक छतनार नीम का पेड़ हुआ करता था जो कुएँ पर छाया किये रहता था.....और तो और उसकी पत्तीयां और निमकोलीयां कुएँ में गिरती रहती थीं जिससे पानी तिब्बी ऐतबार से मुफीद समझा जाता था।""जी भैया, लेकिन अब तो इधर कई बरस से गाँव के सभी कुएँ सूख चुके हैं" अन्जुम ने मुझे सूचित कीया।

बातों ही बातों में हम खेत पर आ गए, खेत के किनारे–किनारे सात ताड़ के पेड़ हुआ करते थे, अब चार ही थे परन्तु वहां एक छायादार नीम के पेड़ की बढ़ोतरी हो गई थी। खेतों में गेहूँ, सरसों, अरहर, आलू और पशुओं के चारा हेतू बरसीम बोये गये थे, अंजुम इन फसलों के बारे में मुझे बता रहा था, लेकिन मेरा ज़ेहन तो फिरंगी में उलझाा हुआ था। मैं बे–मन ऐसे ही खेतों–खेतों घूमता रहा फिर घर आगया। दोपहर के खाने के बाद मैंने अंजुम से निवेदन किया।
"अंजुम प्लीज़, ज़रा फिरंगी को बुलवा लो यार"
"हां भैया, आप आराम करो, संझा के बेला उसे बुलवा लेंगे"

भीतर के कमरे में उसने तख्त पर बिस्तर लगा दिया और स्वंय बराबर के तख्त पर लेट गया, कुछ छण बाद ही उसके खराटे

कमरे में गूंजने लगे, किन्तु मेरी आँखों में नींद कहां थी, मैं ऐसे ही यादों की उंगली थामे तीस वर्श पूर्व के गाँव की पगडिंडीयों पर निकल पड़ा था।

फिरंगी नौटंकी का रसिया था। वो दिन भर साईकल लिये गाँव–गाँव भटक कर पता लगाता कि किस गाँव में बरात आ रही है तथा उस में नौटंकी किस की है। उन दिनों 'मास्टर धनई राम' और 'तुल्ला भांड' की नौटंकियाँ मशहूर थीं अथवा दरभंगा की नौटंकियों की धूम थी। हम रात दादा के सो ज़ाने के बाद चुपके से नौटंकी देखने निकल जाया करते थे और अन्धेरी रात में दो–दो कोस पैदल चलते थे। फिरंगी की स्मृति ग़ज़ब की थी, दूसरे दिन दोपहरी में जब हम स्कूल पर इकट्ठा होते तो वो नौटंकी में खेले गए नाटक 'खूनी लड़की' और 'शाही लकड़हारा' के पात्रों की नकल करता और हम सब प्रसन्न होते। कभी–कभी हम बच्चे भी नाटक खेलते, फिरंगी गोरा–चिट्ठा था इसलिए उसे लड़की का पात्र दिया जाता था और वो अपना वेश–भूशा ऐसी बनाता कि असल लड़की मालूम होता। इस के अतिरिक्त फिरंगी मछली मारने में भी माहिर था। मछलियों का शौक़ मुझे भी था, इसलिये हम मछलियों के शिकार के लिए गाँव के कुड़िया, सत्ती, रौरी और शाह के पोखरे तक चले जाया करते थे।
''भैया, मछली खाते हैं न ?''
''आं !'' किसी की आवाज़ पर मैं चौंक कर ऐसे उठ बैठा मानो फिरंगी ही संबोधक हो। फिर फ़ारुक़ पर दृश्टि पड़ते ही जैसे कुछ न समझ पाने की झेंप मुझ पर तारी हो गई।
''भैया, रोहू मछली मोल बिकने आई है, अगर आप को पसंद हो तो ले लिया जाय''
''और कौन–कौन मछलियां हैं ?'' कुछ पल बाद मैंने पूछा।
''बड़की मछली में बेलगगरा, पढ़िना और मंगुर है, छोटकी में चेल्हवा, धवई और सिधरी है।''
मुझे याद आया कि फिरंगी को सिधरी बहुत पसंद थी, हम अकसर 'सत्ती' या 'रौरी' में अपनी लुंगी खोल घुस जाया करते थे और एक

ओर से लुंगी के दोनों छोर फिरंगी पकड़ता था दुसरी ओर से मैं! हम उसे पानी में डुबाके कुछ दूर चलते फिर उपर उठा लेते, हर दफे चार–छे सिधरी आही जाती, इस प्रकार घन्टा भर में सेर देढ़ सेर सिधरी का शिकार हो जाता। दादा के भय से मछलियाँ अपने घर न लाता, फिरंगी ही ले जाता और उसकी काकी प्याज़, लहसन, अदरक और मरचा पीस के मछलियों को तवे पर हलकी आँच में पकाती, मैं और फिरंगी मिल के बाजरे की लिट्टी से मज़ा ले ले कर खाते।

"भैया बताये नही।"

अब की फ़रुक़ की आवाज़ ने जैसे मेरी स्मृति के मोबाईल के मेमरी कार्ड में एरर डाल दिया हो और कुछ पलों के लिए मेरे दिमाग़ का स्क्रीन बिलकुल ब्लेंक होगया। परन्तु जीभ पर जाने कहाँ से सिधरी मछली का स्वाद आ के चिपक गया। मैंने फ़ारुक़ से कहा।

"यार हो सके तो सिधरी ले लो और तवे पर मसाले में पकवाओ।"

"हां भैया.....सिधरी ऐसे ही पकाने पर मज़ा देती है, साथ में लिट्टी हो तो क्या कहना।""अरे हां! अच्छा याद दिलाया तुम ने......वो......वो लिट्टी ज़रुर बनवाना"

"भैया ! आप लिट्टी खाये हैं ?"

"हां ! कई बार.......फिरंगी की काकी बहुत ही लज़ीज़ लिट्टी बनाती थी......अरे हां! अंजुम से कई दफे कह चुके, पता नही वो जा क्यों नही रहा, मछली लेने के बाद तुम ही फिरंगी को बुला लाना.........."

"ठीक है भैया" कहता हुआ वो इस तेज़ी से कमरे से बाहर निकला मानो कमरे में उसका दम घुटने लगा हो।

मछली और लिट्टी एकदम वैसे ही पकी थी जैसा कि फिरंगी की काकी पकाया करती थी। मैंने खूब जमके खाया। खाते हुए मुझे ऐसा महसूस हो रहा था जैसे मैं चाचा, फ़ारुक़ और अंजुम के साथ नही बल्कि फिरंगी और उसकी काकी के साथ बैठ के खा रहा हूं। काकी चुल्हे पर लिट्टी सेंक रही है और तवे से खुरच के हमारे प्लेटों में मछलियाँ भी परोस्ती जारही है।

भोजन के बाद मैंने जब लिहाफ में शरण ली तो मुझे फिर

फिरंगी की याद सताने लगी, परन्तु अबकी मैंने किसी से कुछ नही कहा, बल्कि मन ही मन यह ठान लिया कि भोर होते ही मैं स्वयं पूछते पछारते फिरंगी के यहां जा पहुँचूंगा। यकीनन मुझे वह अपने द्वार पर देख गद–गद हो जाएगा। झट चारपाई पर बैठाएगा तथा मेरे लिए नाश्ता–पानी का प्रबंध करने में जुट जाएगा। मैं झूटी नाराज़गी प्रकट करुंगा और कहूंगा। "मुझे नही चाहिये तुम्हारा नाश्ता–पानी" वह मेरी चिरौरी करेगा और मित्रता का वास्ता देते हूए कहेगा। "एक तुम ही तो हो हमरे लड़कपन के साथी.......कौनो गलती–सलती होय गई हो तो माफ कर दो और हमके दोस्ती का धरम निभाने दो" इस पर मैं बनावटी गुस्से से कहूंगा। "ऐसे ही निभाओगे दोस्ती का धरम ?रात इत्तेफाक़न मिले भी तो बजाये घर तक आने के राह में ही साथ छोड़ गए.......फिर दूसरे दिन मिलने का वादा भी तो किया था.....क्या हुआ उस वादे का ?लड़कपन में तो खूब वादे निभाते थे, वादा निभाने में अपने कक्का की मार से भी नही डरते थे......... अब बताओ ऐसी कौन मजबूरी थी जो तुम मेरे साथ घर तक नही आ सकते थे ? या ऐसा कौन सा काम आपड़ा था जिस के सबब अपने लड़कपन के साथी को घटाटोप अंधियारे में ठोकरें खाने के लिये छोड़ कर चले गए ?

सोचते–सोचते कब मेरी आँखें लग गईं मुझे कुछ होश नही। हां! जब होश आया तो मैं खुद को गांगी नदी के पुल पर खड़ा देख आवाक रह गया। मैं सोचने लगा कि इस ठिठुरती, कांपती, अन्धेरी रात में यहां कैसे आया ! और ज़ेहन की मेमरी में मौजूद सभी फाईलें तथा फोल्डरों को सर्च करने लगा। इसी बीच मेरी दृश्टि पुल से धोबियों के घाट तक जाने वाले ढलान पर पड़ी, देखा फिरंगी तेज़ी से चढ़ान चढ़ता हुआ आ रहा है। उसे देख मेरा विचलित मन शांत हो गया कि कुछ भी हो फिरंगी से भेंट तो हुई, अब इसी के साथ बोलते–बतियाते घर तक जायेंगे..........परन्तु ये क्या ! फिरंगी पुल पर आने के बाद भी मुझे एकदम अन–देखा करके आगे बढ़ गया। पहले तो मैंने समझा कि वह मुझ से दिल–लगी कर रहा है, लेकिन जब वह उसी गति से आगे और आगे बढ़ता ही चला गया, यहां तक 'रकबां' गाँव के मोड़ तक पहुंच गया तो मुझे कुछ शक हुआ और मैं

उसे पुकारता हुआ दौड़ पड़ा........फिरंगी था कि अपनी धुन में चलता चला जा रहा था, मेरी आवाज़ पर एक दफा भी न पलटा। मैं था कि चीखता–चिल्लाता बे–तहाशा उसके पीछे दौड़ा जा रहा था, अचानक पीछे से किसी ने मुझे धर–दबोचा, मैं कुछ जाने–समझे बिना झटका देकर स्वंय को उसकी पकड़ से छुड़ा लिया और फिर दौड़ने लगा। अब कि दबोचने वाले ने मेरी कमर के गिर्द अपने हाथों का घेरा बना के मुझे पकड़ा था, उसकी पकड़ इतनी सख्त और मज़बूत थी कि लाख झटका देने पर भी खुद को उसकी पकड़ से आज़ाद नही कर पाया और पिंजरे में कैद पक्षी की भांति छटपटाते हुए फिरंगी को पुकारता रहा। जब मेरी छटपटाहट कुछ कम हुई तो पकड़ने वाले की फुसफुसाती आवाज़ मेरे कानों में गूंजी।

"ये क्या पागल पन है भैया !.....कहाँ है फिरंगी ?"

मैंने मुड़ के देखा तो वह फ़ारुक़ था.....उसी छण एक हाथ में लाठी तथा दूसरे में सर्च–लाईट थामे वहां अंजुम भी आगया, फिर दोनों मेरे अगल–बग़ल हो मुझे बीच में कर लिए और मेरी बाँहें पकड़ मुझे घर-ले आए।

चाचा बाहर नीम तले बेचैनी से टहल रहे थे और उनकी दोनों बहुएँ चिंता की मूरत बनी दालान में खड़ी थीं। हमें आता देख दोनों भीतर चली गयीं और चाचा लपक कर मेरे निकट आ गए और बड़े दुलार से मेरे सिर पे हाथ फेरते हुए लहराते स्वर में बोले।

"बेटा, क्या हो गया है तुम को ?"

"कुछ तो नही चाचा.......पता नही कैसे मैं.............!"

मेरा वाक्य अभी पूरा भी न हो पाया था कि फारुक़ बीच ही में बोल पड़ा।

"अब्बा, भैया को ज़रा दम कर दो, जान पड़ता है हवा–बताश के चपेट में आ गए हैं"

ये सुनते ही मेरी तो थरथरी छूट गई और मेरे पैर इस प्रकार काँपने लगे कि मेरा खड़ा रह पाना मुश्किल हो गया, इस से पहले कि मैं गिर पड़ता फारुक़ नें मुझे थाम लिया और अंजुम की साहयता से कमरे में लेजा कर बिस्तर पे लेटा दिया।

सुबह जैसे ही नीद टूटी मेरी आँखों के आगे फिरंगी का

चहरा घूमने लगा। मैं चुपचाप उठा ओर कहारों की बस्ती की ओर चल पड़ा। उस दिशा में अभी दो–चार क़दम ही बढ़ाए थे कि फारुक़ ने मुझे देख लिया। ''भैया उधर कहां ?''
''फिरंगी के घर'' मैंने संक्षिप्त उत्तर दिया।
''कौन फिरंगी ?'' उसके स्वर में झिल्लाहट थी।
''अरे फिरंगी.......फेकू कहार का लड़का !''
''पहले मैदान तो हो आओ......नाश्ते के बाद जहाँ जी चाहे चले जाना, बल्कि हम खुद ले चलेंगे''
''वादा ?''
''.............''
''का बात है बेटा तू दोनों जने वहां काहें खड़े हो ?'' चाचा की आवाज़ पर मैं पलटा तो देखा वह कम्बल ओढ़े हाथ में लोटा लिए हमारी ओर आ रहे हैं।''अब्बा, भैया फिरंगी से मिले खातिर उसके घर जाए चाह रहे हैं''
''तो लेत जाओ, हरज का है।''
''लेकिन अब्बा........''
''लेकिन–वेकिन न लगाओ......चले जाओ.......ये भी तो एक ठो काम है''
''ठीक है........चलिए''

जब हम कहारें की बस्ती में पहुँचे तो एक कच्चे मकान की ओर संकेत करते हुए फारुक़ ने कहा।
''देखो यही फिरंगी का घर है।''
हमें देख इधर–उधर खेलते छोटे–छोटे बच्चे हमारे निकट आ गए, इन्ही में एक सात–आठ वर्श का बालक फिरंगी का भी था। जिससे फारुक़ ने पूछा ''कारे झगड़ुआ तोर माई कहाँ है ?''
''भीतर........'' उसने सरल भाव से उत्तर दिया।
''और फिरंगी......?'' मैं उसके गाल को प्यार से थपथपाते हुए पूछा। वह ये सुनते ही विस्मित दृश्टि से मेरी ओर ताकने लगा। इसी बीच फारुक़ ने गुहार लगाई। ''धनरा भौजी........ए धनरा भौजी!''
''के है ?'' कहती हुई वह बाहर आई और मुझे चकित दृश्टि से

देखने लगी। वो सांवले रंग की दुवली पतली अधेड़ उम्र महिला थी, मटमैली सी दो एक जगहों से मस्की हुई साड़ी पर इतना ढीला ब्लाउज था कि उस में उस जैसी दो महिलायें समा जायें।
"कौनो काम है का भैया ?" वो फारुक़ की ओर देख पूछी।
"ई हमरे ग़फूर भैया हैं, बम्बई से आए हैं, झगड़ुआ के बाबू के लड़कपन के साथी हैं। मिले खातिर आए हैं"
इतना सुनते ही वह झट मेरे चरणों में गिर पड़ी और बयान कर-कर रोने लगी। ये देख मेरा दिल जैसे डुबने लगा क्योंकि मैं इस अन्दाज़ से रोने का अर्थ भली भाँति जानता था, फिर भी फारुक़ की ओर ताकते हुए आँखों ही आँखों में जानना चाहा कि आखिर ये माजरा क्या है। इस बीच उसके रोने की आवाज़ सुन पास-पड़ोस की महिलाएँ तथा पुरुश अपने-अपने घरों से निकल आए थे। फारुक़ ने पास खड़े एक बूढ़े से कहा। "महंगू दादा तनी हमरे भैया के फिरंगी के बारे में बता दो।"
बूढ़ा मेरी ओर सोचती आँखों से देखते हुए बोला। "का बताएँ उसके बारे में......बस अब भगवान से प्रार्थना है कि ओकरे आत्मा के सान्ती दें।"
"मतलब !"
"मतलब कि.......वह अब इस दुनिया में नही है।" फारुक़ का स्वर मेरे मस्तिश्क पर बिजली की भाँति गिरा।
"क्या !"
"हां भैया........फिरंगी मर चुका है।"
"झूट है ये" मैं चिल्लाया।
"भैया,इ सच है.....तुम्हरी कसम !"
"अगर ये सच है तो उस रात वह कौन था। जिसने मेरा बेग और सूटकेस उठाके गाँव की चौहद्दी तक मुझे छोड़ा था, और बीती रात भी तो.........."
"भैया, ये सब तुम्हरा वहम है.......पाँच बरिस हुआ किसी ने उसकी बड़ी बे-रहमी से हत्या कर दी थी, वहीं गांगी नदी के पुल तले।"

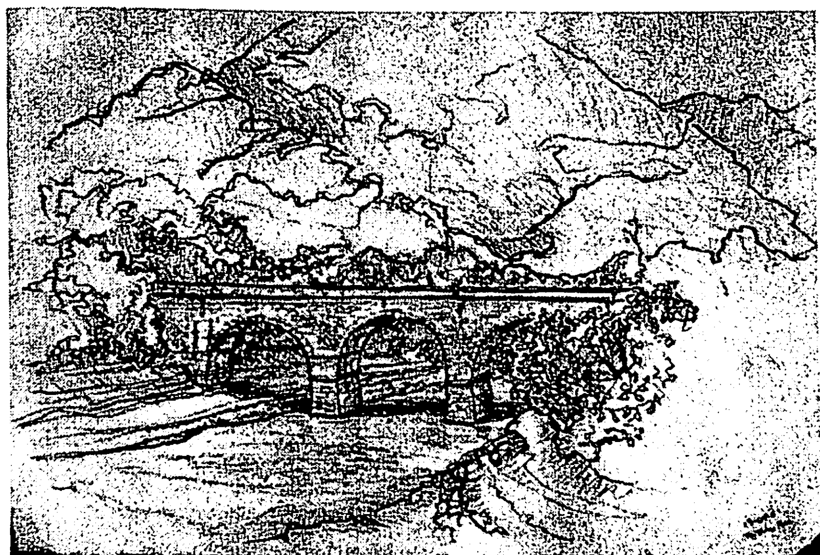
इसके बाद फारुक़ ने और क्या-क्या कहा था मुझे कुछ होश नही.......हां ! जब होश आया तो में खुद को कमरे में बिस्तर पे पड़ा

पाया और कमरे में लोबान की महक बसी हुई थी। मेरे सिरहाने गाँव ही के पुरोहित जिन्हें गाँव के सभी लोग झोंटा बाबा कहा करते थे, बैठे चाचा से कह रहे थे।
"ग़फूर मियाँ जो कहत हैं सत्य है, ऐसा होत है......कारनकि फिरंगी की आत्मा ठाँव–ठाँव भटक रही है, एक तो उसकी हत्या भई है, दूसरे उसका दाह–संस्कार ढंग से नही हुआ, न ही अस्थी बहाई गई....और न ही आत्मा की शांती हेतू तेरही हुई......." "बाबा......क्या अब भी ये सब किया जा सकता है ?" मैं झट उठते हुए पूछ बैठा।
"काँहे नही किया जा सकता.....अरे भाई कहावत है 'जब जागो तब भिन्सार'....."
"बाबा, अब ये काम आप ही को करना होगा, रुपया–पैसा जेतना भी लगे हम देंगे" फिर अलमारी से सौ–सौ रुपयों की दो गड्डियां निकाल के उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा। "बीस हज़ार रखिए, जो लगेगा फिर देंगे, मगर क़ाम जेतना जल्दी हो सके करवा दीजिए"
"इतने रुपयों में तो समूचा गाँव खाय लेगा"
"ये तो अच्छी बात है" मैं हर्शित हो बोला।

फिरंगी की तेरही जिस दिन थी, सारा गाँव जुटा था। मैं उन्हें खिलाने में लगा था, लेकिन रह–रह के मुझे ऐसा महसूस हो रहा था मानो कोई मेरे साथ–साथ लगा हो। फिरंगी का परिवार बहुत खूश था, उसकी पत्नी तो रह–रह के मेरे आगे हाथ जोड़ कहती। "भैया तूं हमरे लेखे देवता हो।"
"नहीं भौजी.....हमें देवता न बनाओ.....अभी तो हम ठीक से इन्सान भी नही बन पाये हैं.....बस अपने ईश्वर से प्रार्थना करो कि हम एक अच्छे और सच्चे इन्सान बन जायें।"
"जे मित्रता का धरम निभाना जानत है, ऊ इन्सान से भी महान होत है।"
पीछे से आने वाली इस आवाज़ पर मैं मुड़ा तो देखा एक व्यक्ति बन्डी तथा लुंगी पहने, अधरों पर मुस्कान सजाए खड़ा है, फिर वो मेरे कंधे पर अपना हाथ धरते हुए भावुक स्वर में बोला।
"ग़फूर भैया.......तुम ही हमरे सच्चे मित्र हो, हम जानत रहे कि तुम

ही हमरे काम आओगे...."
मैं उस व्यक्ति की ओर ध्यान पुर्वक देखा तो उसका चेहरा–मोहरा फिरंगी जैसा प्रतीत हुआ।
"सच भैया, तूं बड़े महान हो, हम तुम्हरी महानता को नमन करते हैं।" कहते हुए उसने मेरे आगे अपने हाथों को जोड़ लिया, और मैं झट उसके हाथों को थामते हुए भावुक हो बोला।
"महान हम नही, तुम हो......हम तो बम्बई जाके तुम्हें भूल बैठे थे...... अपनी दोस्ती को भूल बैठे थे...........अपनी मिट्टी को, अपने खून को, अपने बुजुर्गों की हड्डियों को भूल बैठे थे.......जबकि तुम हमेशा हमारी यादों को अपने सीने में बसाए रहे, यहां तक कि मरने के बाद भी!..... .....वैसे फिरंगी तुम मरे नही हो, तुम तो ज़िन्दा हो यार.....ज़िन्दा हो। मरा तो हमारा ये समाज है, खुदग़र्ज़ी के मलबे में दब के........मरी है हमारी तहज़ीब, हिर्स व हवस के अन्धे कूएँ में गिर के........मरी है इन्सानियत, फ़िरक़ा परस्ती की आग में झुलस कर...........यार तुम..... तुम तो दोस्ती की अलामत हो, भला कहीं अलामतों को भी मौत आती है ?"







अपना खून

ठाकुरों और हरिजनों के बीच पंचायत की ख़बर जंगल की आग की भांति आस–पास के गॉव तक फैल चुकी थी। जो भी सुनता स्तब्ध रह जाता. क्योंकि गॉव के इतिहास में इस तरह की घटना अब तक नहीं घटी थी। आखिर ठाकुरों को पंचायत की क्या आवश्यक्तां ?वह भी हरिजनों से ??जबकि ठाकुर स्वयं एक पंचायत होता है. उसकी वाणी पंच होती है. मुख से निकला एक–एक शब्द न्याय होता है. अर्थात अटल फैसला! फिर भला इस पंचायत का क्या अर्थ ?

पंचायत के लिए शिवाला का चबूतरा चुना गया था. गॉव के गॉव इस पंचायत को देखने के लिए उमड़ पडे थे. चबूतरे पर ठाकुरों की टोली सीना ताने बैठी मूँछों को ताव दे रही थी. दूसरी ओर बरगद तले बूढे हरिजनों का गीरोह डर व भय की मूरत बना ऑखों में वीरानी समेटे बैठा था। उनके नवजवान पंचायत की हद से बाहर आक्रोश से भरे खड़े थे.

पंचायत की कार्यवाही शुरू हो चुकी थी. कनर्ल नियाज खान सरपंच की हैसियत से कुएँ की जगत पर बिराजमान थे और हरिजनों के चौधरी भुलई राम का बयान इस अंदाज़ से सुन रहे थे मानो न्याय व इन्साफ के देवता हों या फिर समय के तख्त पर आसीन शहंशाह जहॉगीर! भुलई हाथ जोड़े कह रहा था। "सरकार काल सबेरे विजय बाबू बस्ती मा आए रहे....सायद उनके गेहूँ की कटाई वास्ते मजूर की जरूरत रही. बकिन ऊ बखत कोई फुरसत से न रहा,सबके सब अपनी अपनी मजूरी पे चला गय रहे. जब उनके कोई न मिला तो निरास होय के लऊट पड़े, लऊटते बखत उनकी नजर रामपलट पर पड़ गई. जो नीम के नीचे बइठा पढ़त रहा. विजय बाबू ओके देखतै रूक गए आउर ज़बरी ले जाए लागे. ऊ बार बार कहत रहा कि बाबू साहब कऊनो दूसरे के ले जाओ, इ बखत हमार मजूरी करे का नहीं पढ़े का है. परसों हंमरा इम्तिहान है. यही पर विजय बाबू लाल पीयर भए गए, लगे मारने—गरियाने."ससुर के नाती! बड़ा पढ़वइया भए हो. बाप दादा तो हल जोतत—जोतत मर गए ई ससुर पढ़ै चले हैं. वकील—डागडर बने का सपना देखत हैं...... चल सारे गेहूँ काट, तोरे जैसेन चमार सियार वकील—डागडर बनै लागें तो का दसा होई ई देस का. आउर उछड़ के एक लात ओकी छाती पे जमा दिए। सरकार! पलटूओ गबरू जवान है. ओमा भी गरम खून है. ओकी भलमंसी देखो इतना पर भी बस हाथै—गोड़ जोड़त रहा, बिंन्ती करत रहा. मगर जब ऊ ना माने आउर ओके पीटतै रहे, तब ऊहो ख्सियाके एक अड़ंगा लगावा अउर दोएं से पटक के चढ़ बैइठा. हम झूठ नाही कहब सरकार रामपलटो पर भी खून सवार हो गवा रहा. उहो मरै—मारे पर उतारू हो गवा रहा ऊ तो भीमजी की किरपा भए गई, जो हमरे डांटे से छोड़ दिया आउर ऊ कौनो तरह जान लेके भागे..."
"फिर" कनर्ल खान की आवाज़ गूंजी.
"फिर त माई—बाप देखतै देखत समूचा ठाकुरहन लाठी—गोजी, बल्लम—भाला लई—लई बस्ती पर टूट पड़ा. आन की आन मा घर—मकान, खेत—खरिहान जरै लाग...बिटया—बहिन की इज्जत से खिलवाड़ होवै लाग...... अब आपै बतावें सरकार ऐसे बखत मा कोई कैसे हाथ पर हाथ धरे, मुंह मा घुनघुनिया डारे चूपचाप बइठा रहीगा... ..फिर बस्ती के....!"भुलई अपनी बात पूरी कर भी नहीं पाया था कि

ठाकुरों के चौधरी झाड़ी सिंह तनतना के उठ खड़े हुए और गरज कर बोले,"लेकिन ऊ चमरौटे की हिम्मत भई कैसे कि ठाकुरन पे हाथ उठावे, एक नीच दलिद्र हम लोगन का जूठन पतरी चाटै वाले, जे कभी हम लोगन के आगे सिर न उठा सके, ऑख से ऑख मिला के बतिया न सके आज उहे हमसे मुकाबला करै पे तुले हैं..... खान साहब इन से कह दें हम से न उलझें, नाही तो अभी घर–बार जरा है आगे चिता जरेगी. गुठली कितनाहूँ कांहे न बढ़ जाए पर रहत है आम के भीतर ही..."

भुलई झाड़ी सिंह की धमकी सुनकर असमंजस में पड़ गया. सोचने लगा कि अब क्या कहे, अगर ठाकुरों के खिलाफ जबान खोलता है तो वह हंगामा खड़ा कर देगें और अपनी बिरादरी की तरफ से क्षमा याचना करता हैं तो बिरादरी के नवजवानों के बिफर उठने का अंदेशा है। कारण कि अब वह किसी से दब कर या डर–सहम के जीना नहीं चाहते बल्कि सम्मान का जीवन चाहते हैं। उनका कहना भी तो ठीक है, अब जमींदारी तो रही नहीं, बंधुआ मजदूरी का चलन भी उठ गया. सभी की अपनी–अपनी जमीनें हो गई हैं. हमारी भी गिन्ती किसानों में होने लगी है फिर असिक्षा का अंधीयारा भी तों धीरे धीरे छटता जा रहा है, लोग–बाग पढ़–लिख रहे हैं, ऊँच–नीच का भेद भाव लग–भग समाप्त होता जा रहा है देश भर में सामान्यता का नारा गूँज रहा है, सरकार दलितों को तरह–तरह की सुविधाएं मुहय्या करा रही है, रिजर्वेशन और मंडल आयोग का बोल–बाला है. इसके अतरिक्त अजीब बात तो यह है कि जाने कैसे स्वर्णों की तरह हमारे नवजवानों की रगों में भी गरम खून दौड़ने लगा है, जो छोटी–छोटी बातों पर खौल उठता है....... ऐसा कैसे हो गया ?बर्फ में चिंगारी कैसे संमा गई ?वह इसी असमंजस में इस गुत्थी को सुलझाने का प्रयत्न कर रहा था कि यकायक उसकी दृश्टि भीड़ से अलग खड़ी कजरी पे जा टिकीं..... कजरी लक्खी राजगीर की बहू थी। गोरी–चिट्टी, भरा हुआ गुदाज शरीर, कजरारे नैन, भरे–भरे उभार दार जोबन पर ढ़ीली–ढ़ाली कुर्ती और उस पर धानी रंग की चुनरी गजब ढ़ा रही थी। कजरी

की निस्बत से भुलई को बजरंगी सिंह का ख्याल आ गया. क्योंकि कजरी उसके खेतों की देख–रेख किया करती थी. दर–अस्ल यह दिखावा था इसकी आड में वह उसकी रखेल थी। यह बात कुछ ऐसी ढकी–छुपी भी न थी बल्कि सारा गॉव जानता था......फिर तो भुलई की ऑखों के आगे एक के बाद एक बदामा, भाना, धनरी, इमरती और बदरी के सुन्दर मुख्डे नाचने लगे. यह सभी लड़कियॉ ठाकूरों के घरों में चाकरी किया करती थीं और ठाकुर उनके जवान शरीर के दीवाने थे। वह सोचने लगा कि खुद को सवर्ण कहने वाले ब–ज़ाहिर तो हमसे घृणा करते हैं मगर हमारी बहू–बेटियों के साथ मुँह काला करने में जरा भी लज्जा महसूस नहीं करते. केवल हवस की भूक मिटाने की खातिर ऊँच–नीच और छूत–छात के सभी बंधनों को तोड़ देते हैं और हम हैं कि सब जानते–समझते हुए भी चुप्पी साधे रहते हैं। आखिर खामोशी की यह मीरास कबतक ऐसे ही पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढती रहेगी ? इससे पहले कि वह इन प्रश्नों का उचित उत्तर खोजता कोई बात उसकी बुद्धि में समाई, साथ ही होंटों पर भिन्न प्रकार की मुसकान रेंगने लगी. अभी वह इस मुसकान से भली भांति परिचित भी न हो पाया था कि कर्नल खान की भारी आवाज़ गूंजी.

"ठाकुरों पर हाथ उठाने की हिम्मत कैसे हुई तुम लोगों की....?"

इतना सुनना था कि भुलई पर कपकपी छा गई। मगर किसी प्रकार खुद को संभाला और गिडगिडाते हुए बोला,

"सरकार हमरी बिरादरी के लेखे आपै लोग तो भगवान हैं, आप घुड़क के ताक दें तो हम लोगन की कपकपी छूट जात है, सरकार रही हाथ उठावै वाली बात त उ केकरा में एतना साहस है जो आप बाबू साहेबन पर हाथ उठावै, सिवाय आपके अपने खून के...."

"मतलब....?"कर्नल विस्मय पूर्ण स्वर में गुर्राए।

"मतबल..त एक दमै साफ है सरकार, अब आप न समझ पावें त ईमा हमरा का कसूर ?"

"पहेलियॉ न बुझाओ....साफ–साफ कहो जो कहना चाहते हो....."

"कर्नल के स्वर में भुलई की बात न समझ पाने की झेंप स्पस्ट थी.

"मतबल ई सरकार की हमरी बिरादरी के सभी सयान

बिटीया–पतोहू बाबू साहेबन के खेत खरिहान में मजूरी करत है."
"तो क्या हुआ ?तुम्हारी बिरादरी तो सदियों से ऊँची जातियों की गुलामी कर रही है"
"मानत हूँ सरकार, हम लोग गुलाम हैं, हम लोगन का हाथ–गोड़ गुलाम है, खून–पसीना गुलाम है. बकिन सरकार हम लोगन की इज्जत, मान–मरियादा कभी गुलाम नाही रही....बहिन–बिटिया का सरीर कभी गुलाम नाही रहा.....कि जब जी चाहा कू–करम पर उतारू होगए..... सरकार आजादी के बाद से पूरम पूर साठ बरस भै गवा ई लोगन के हमरे बिरादरी के बहिन–बिटिया के संग कू–करम करत....."
"खामोश! बद–दयानत कहीं के......जानते हो इस इलजाम का नतीजा....?"
"ई इलजाम नाही है सरकार....सच्चाई है सच्चाई....."
"सच्चाई........." कर्नल के माथे पर सिलवटें पड़ गईं.
"हॉ सरकार......."
"तो तुम्हें यह सच्चाई साबित करनी होगी....अभी और इसी वक्त....है कोई सबूत.....?"
"एक दो नाही पचासन सबूत हैं सरकार पचासन!....पहला सबूत ऊ देखौ सामने खड़ी है कजरी"
कजरी का नाम सुनते ही ठाकुरों में खलबली मच गई, आपस में काना फूसी होने लगी. भुलई के लगातार बोलने अथ्वा दमा के रोग के कारण उसका सीना धुकनी की भांति फूलने–पिचकने लगा था. वह कुछ छण चुप रहकर सॉसों को दुरूस्त किया फिर बोलना आरंभ किया,"सरकार....ई जो कजरी है न, लक्खी राजगीर की पतोहू आउर पलटू की घर वाली है. बस्ती का पूरे जवार में एकरे मुकाबले सुंदर बिटीया केहू नाही. एकरे खातिर गॉव मा कई दफे गोजी–बल्लम निसर गवा रहा. खून–खराबा की नौबत आय गा रही। अब लगभग तीन बरिस से ई बजरंगी बाबू साहब की रखैल है, ई बात बस्ती के लड़का–सयान सभी जानत हैं, ई भी जानत हैं कि कजरी का घर वाला चार बरिस भवा कमाय परदेस गवा है आउर आज दिन तलुक लौट के नाही आवा बकिन कजरी ई चार बरिसन

मा दू लड़कन की मतारी होय गई है. अब आपै बतावें सरकार, ई लड़कन ऐकरी कोख मा आए कहॉ से ?जब कि ऐकरा घरवाला! यहॉ नाही आउर ई आठ पहर चौंसठ घडी बजरंगी बाबू के संग रहत है.... बतावें सरकार आग आउर फूस साथ–साथ धरा जाई तब का होगा ?आग तो लागेगी न.....?''

''यकीनन.......'' कर्नल खान बुदबुदाए.

''यानी आप मानत हैं सरकार, कि कजरी के दूनौ लड़कन बजरंगी बाबू की सन्तान है..?''

''ल...लेकिन....लेकिन वह...नाजायज हैं..''कर्नल खान के स्वर में बौखलाहट स्पश्ट थी.

भुलई के अधरों पर मुसकान रेंगने लगी,''भले नाजायज हों.....बकिन खून तो बजरंगी बबुए का हैं न.....ठाकुर का खून...?

''सो तो है.....''कर्नल खान असमंजस की दशा में ठोड़ी खुजाते हुए बोले.

''अब आपै बतावें सरकार, जब ठकुरै का खून ठकुरै पे हाथ उठावै.... बे–इज्जती करै त ईमा हमरे बिरादरी का कौन दोश..?''

भुलई के यह शब्द सुनते ही ठाकुरों के उठे हुए सिर लज्जा से झुक गए। विश उगलने वाली जीभों पर ताला पड गया, कुछ देर ऐसा सन्नाटा रहा मानो सभी को सॉप सूॅघ गया हो. फिर कुछ छण बाद ही सब के सब अचानक चौंक पडे जब भुलई की आवाज दोबारा उनके कानों से टकराई, वह नम्रता पुर्ण कह रहा था,''बस, अब सरकार से हमरी एतनै बिन्ती है कि आप बाबू साहेबन से कह दें कि हमरी बरिादरी के नादान लड़कन के आपन सन्तान.....आपन खून जान के माफी दई दें.''

बहरूपिये

सारा गुजरात जल रहा था। गोलियों की धाँय–धाँय कलेजा दहलाए दे रही थीं। प्रबन्धक एवं कानून के रखवाले तक राम के नाम पर लूट मार,कत्लो–गारत गरी में जुटे थे। उसकी पवित्रता को दागदार कर रहे थे। मासूम सीनों में ख़ंजर उतार रहे थे, बूढों और विकलांगों को आग में नहला रहे थे। हर तरफ आहों, कराहों और चीखों का राज था। मतलब आतंक अपने पूरे शबाब पर था।

शबाब तो सीता पर भी कुछ ऐसे टूट कर आया था कि रह–रह के उसका आँचल ढलकने लगा था और उसका बाप उसके ब्याह को लेकर चिंतित रहने लगा था। सीता का बूढ़ा बाप कोई राजा जनक तो था नहीं कि उसके लिए स्वयंबर रचाता। सीता थी बडी सुन्दर....... उसकी सुन्दरता का डंका सारे भडोच में बजता था मगर अफसोस! किसी में इतना हौसला न था कि राम बनकर उसके जीवन से जुड़ जाता, क्योंकि उसकी सुन्दरता के समक्ष प्रतिश्ठा का सूरज दरिद्रता से गहनाया हुआ था, दूसरे उसका बाप भी नहीं चाहता था कि उसकी लाडली किसी निर्धन के पल्ले से बंधे,क्योंकि वह अच्छी तरह जानता था कि निर्धनता आदमी की मान–प्रतिश्ठा खो देती है और उसका अहंकार, उसकी मर्यादा, उसके स्वाभिमान को भरपूर सुरक्षा प्रदान नहीं

कर सकती....निर्धनता हमारे समाज का एक ऐसा मर्ज है जो आदमी की प्रतिश्ठा के साथ–साथ उसकी मर्दानगी तक निचोड़ लेता है। बलवान से बलवान मर्द को मानसिक तौर पर निरबल कर देता है.

बाप गरीब जरूर था मगर था दूर अंदेश......उसने सोचा यहॉ इस शहर में बेटी का हुस्न उसकी दरिद्रता के निशाने पर है. क्यों न उसे लेकर दूसरे शहर कूच कर जाए.....किसी ऐसे शहर जहॉ उसका बे–मिससाल हुस्न किसी को उसकी निर्धनता तथा दरिद्रता के विशय पर सोचने का अवसर ही न दे और वह मन ही मन अपनी लाडली बेटी सीता की खातिर राम की खोज में निकलने के लिए शहर का चयन करने लगा......एक के बाद दूसरे कई शहरों के नाम उसके मस्तिश्क के मॉनीटर पर उभरे लेकिन उन सभी नामों में से कोई नाम उसे लुभा न सका. उसकी सोच थी कि शहर का नाम भी राम के नाम के अनुकूल होना चाहिए और उसके जेहन में राम के नाम से संबंधित शहरों और कस्बों की सूची तैयार होने लगी,जैसे रामगंज,रामनगर,रामपुर,रामगढ़.....मगर अफसोस! इन सभी नामों में से कोई नाम उसे प्रभावित न कर सका और वह इस ख्याल को जेहन से झटक कर चिन्ता और दुख की चादर ओढ़कर लेट रहा। इसी पल बाहर उसे हल्ला पो पो सा कुछ सुनाई पड़ा. वह हड़बड़ाकर उठ बैठा और बाहर से आने वाली आवाजों को अपने कानों में उतारने की कोशिश करने लगा। जब उसे कुछ साफ साफ सुनाई न दिया तो वह झुंझलाकर बाहर सड़क पर निकल आया। वहॉ उसे दूर से एक जुलूस आता दिखाई दिया,जिस में स्त्री पुरुश मिला कर लग भग सौ डैढ़ सौ लोग रहे होंगे। कुछ ने हाथों में भगवे झंडे उठा रखे थे तो कुछ के हाथों में त्रिशूल थे। वह सबके सब एक आवाज़ हो कर बस एक ही नारा लगाए जाते थे कि "कसम राम की खाते हैं.....मंदिर वहीं बनाएंगे...."

राम का नाम सुनते ही उसके मन में सीता की प्रति राम की चाह मचलने लगी.......................कौन है राम ? कहॉ है राम ? कोई मिलवाए मुझे भी राम से......मेरी बेटी सीता उसे जयमाल पहनाने को व्याकुल है।

पूछने पर पता चला कि यह जुलूस कारसेवकों का है और यह सारे लोग अयोध्या जाने वाले हैं शिला दान करने के लिए...... अभी शिला दान करेंगे फिर राम मंदिर का निर्माण करेंगे.
''क्या राम मंदिर का निर्माण....?''वह चौंक पड़ा,''अयोध्या में राम मंदिर का निर्माण.?'' बताने वाले ने कहा,''हॉ भाई! अयोध्या ही में तो राम जन्म भूमि है...''
''राम जन्म भूमि.....''वह चकित हो बताने वाले का मुहं ताकने लगा।
''हॉ! अयोध्या ही में भगवान राम का जन्म हुआ था..''वह खुशी से चहकने लगा था।
''लेकिन ,भाई, अब भी तो वहॉ किसी न किसी राम का जन्म होता होगा......?''
''जन्म की कहते हो....वहॉ तो जन्म जन्मांतर से बस राम ही राम हैं, कण–कण में राम.....जल में राम,वायु में राम, राम नाम सत्य है..... ''और बताने वाला लपक कर जुलूस में शामिल हो गया था।

सीता का बूढा बाप बेहद खुश था. और संतुश्ट भी कि अब कोई न कोई राम उसकी बेटी को जरूर मिल जाएगा। .....अब वह अपनी लाडली बेटी सीता को लेकर राम जन्म भूमि जाएगा, वह भी कारसेवक बनकर.....वहॉ शिलादान के साथ–साथ कन्यादान का भी पुण्य प्राप्त करेगा।

कारसेवकों में हर प्रकार के लोग शामिल थे। सज्जन भी, लुच्चे,लफंगे भी, धर्मी–अधर्मी भी। यह सभी सीता को ललचाई और प्यासी निगाहों से निहारते थे। चंद एक ने तो छेड छाड भी किए। एक साधू रुपी कारसेवक की ऑखें उसे देखते ही वासनात्मक हो गई और वह धीरे धीरे अपना आपा खोता गया था। उसकी इस हरकत पर बूढ़ा बाप क्रोधित होगया। परंतु वह साधूनुमा कारसेवक बजाय लज्जित होने के बूढे का गिरेबान पकड़ लिया। फिर क्या था उसके गुर्गे कहकहा लगाते हुए अदबदा कर सीता से छेड छाड करने लगे। यह दृश्य देखकर बूढ़ा बाप हाथ जोड़ गिड़गिड़ाने लगा,बेटी की आबरू की दुहाई देने लगा लेकिन वहॉ ऐसा कौन था जो उन दुश्टों से उस अबला को बचा लेता। कहने को तो मर्द बहुत

से थे किन्तु सभी की मर्दानगी केवल मूँछों तक सीमित होकर रह गई थी। बूढा बाप लगातार दुहाई देते देते थक चुका था और गाड़ी अपनी पूरी गति से अयोध्या की ओर बढ रही थी। हर पल अयोध्या की दूरी कम से कम होती जा रही थी जबकि बूढ़ा बाप सोचने पर मजबूर था कि वह अयोध्या जा रहा है या लंका?कारण कारसेवक उसे राम भक्तों के रूप में रावण भक्त मालूम हो रहे थे यानी कि राक्षस। इसी बीच एक कारसेवक सीता के साथ दस्त दराज़ी कर बैठा और उसी आन न जाने कहॉ से एक नवयुवक रामचरण वहॉ आ धमका और झपट कर उस कारसेवक पर लातों–घूँसों की बरसात कर दी, जो कोई भी उसके बीच–बचाव को आता वह उसपर भी टूट पड़ता। परिणाम स्वरुप सारे के सारे दम साध लिए और उस साधू रुपी कारसेवक का तो पता ही न था कि उसे धरती लील ली या आकाश!

अयोध्या पहुॅचने पर दोनों बाप–बेटी नवयुवक रामचरण के संग संग ही रहे। बूढ़ा बाप उसे प्रत्येक समय एक परोपकारी के रुप में देखता रहता और मन ही मन में उसकी बेबाकी और वीरता का बखान करता साथ ही साथ उस के दिमाग में यह प्रशन मक्खी की भांति भिनभिनाने लगा था कि कहीं रामचरण ही उसकी बेटी सीता का राम तो नहीं?और उसे रामचरण हर प्रकार से सीता के योग लगने लगा फिर मन ही मन उसने फैसला कर लिया कि जिस महूर्त में शिलादान होने को है उसी महूर्त में वह रामचरण के संग सीता का गठबंधन कर कन्यादान कर देगा और इस विशय में रामचरण की राय जानने हेतु उसके कमरे की ओर चल पड़ा.

जिस धर्मशाला में दोनों बाप बेटी ठहरे थे. उसी की ऊपरी मंज़िल के एक कमरे में रामचरण भी रह रहा था। बूढ़ा जब उसके कमरे के समीप पहुॅचा तो किवाड़ भीड़े हुए थे. शायद रामचरण सो रहा हो यह सोच के वह लौटने ही को था कि भीतर कुछ गिरने की आवाज़ गूंजी वह ठिठक गया और अध खुली खिड़की से अंदर झांका। रामचरण धोती बांधे दर्पण के समक्ष खड़ा था, उसकी पीठ खिड़की की ओर थी। कुछ पल वह इसी मुद्रा में खड़ा भिन भिन कोण से स्वंय को निहारता रहा फिर खूटी से टंगा कुर्ता उतार कर पहना और उसी

खूँटी से लटके बेग का जिप खोल कर लंबे बालों और दाढ़ी की विग निक़ाली और बड़ी ही सतर्कता से बालों को दुरूस्त करके सिर पे ओढ़ लिया। फिर उलझाी हुई दाढ़ी सुलझााई आरै चेहरे पर मढ़ लिया। जब माथे पर चंदन का तिलक लगा कर पलटा, बूढ़े की आंखें हैरत से फटी की फटी रह गई. क्यों कि वह अब रामचरण नहीं बल्कि साधूरुपी कारसेवक था..... वह कमरे से जैसे ही बाहर आया बूढ़े ने लपक कर उसकी दाढ़ी नोच ली और गुर्राया।

''दुश्ट बहरूपिए......''

इस से पहिले कि बूढ़ा कोई टंटा खड़ा करता रामचरण ने उसके सिर पर एक चोट लगाई वह त्योंरा कर उसके चरणों में आ गिरा और बेहोश हो गया। रामचरण झट खींच कर उसे कमरे में ले आया, फिर झट पट बालों की विग उतारी, दाढ़ी बूढ़े के हाथ से खींचकर जल्दी जल्दी अपने कपड़े, चादर और दूसरी वस्तु थैले में ठूंसा और थैला उठाकर कमरे से निकल गया।

बूढ़े को जब होश आया वह आंखें मिचका मिचका कर अपने आस पास का जायजा लेने लगा। उसी छण अचानक उसे अपनी बेटी सीता का ख्याल आया और वह उठकर कमरे से निकल आया। लपक झपक जीने से नीचे उतरा, किसी तरह से अपने कमरे तक पहुॅचा किवाड पर ताला देखकर चौंक पड़ा। इसी पल धर्मशाला का एक कर्मचारी बूढ़े को देखकर यूँ ठिठका मानो उसके कदमों को काठ मार गया हो,

''अरे महाशय आप! आपका तो एक्सीडेंट हुआ था......आप अस्पताल में थे.....''

बूढ़ा खिसिया कर चीख उठा,

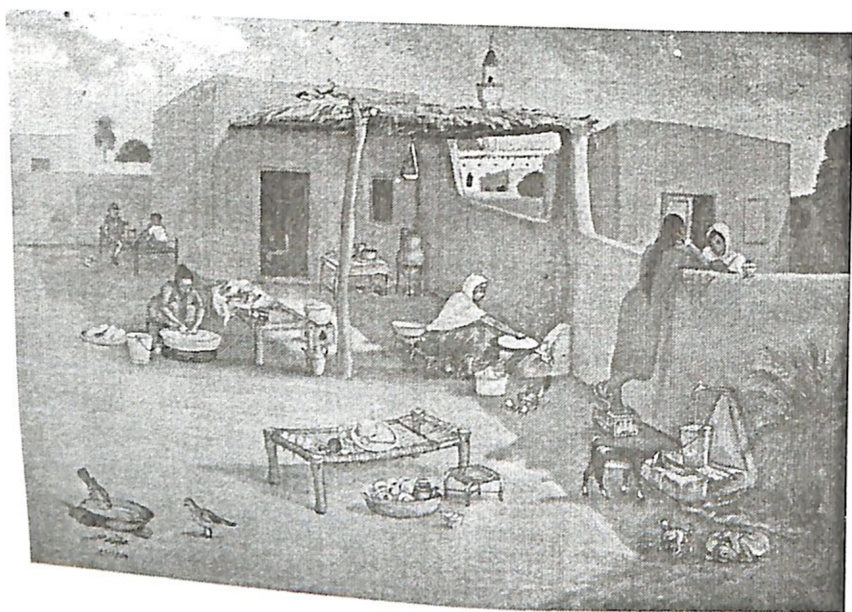
''मेरा क्यों एक्सीडेंट होने लगा ? मैं क्यों जाऊॅ अस्पताल में ?''

''इसी कारण तो इस समय मेरी स्थिति विस्मयजनक है क्योंकि आप अच्छे भले हैं.....आप के तो कहीं खरोच तक नहीं आई है....परंतु आप की पुत्री रामचरण के साथ आप को देखने अस्पताल गई है....''

''क्या सीता रामचरण के साथ.....?''

बूढ़े का सिर चकराने लगा और वह वहीं धम से फर्श पर गिर पड़ा।





बेरी का पेड़

बेटी के जवानी की दहलीज़ पे क़दम धरते ही उस की नींदें हाथों के तोते की भांति उड़ गई थीं, जबकि उसका पति अर्थात बेटी का पिता घोड़े बेच कर दिन रात सोया पड़ा रहता था, यदि जाग रहा होता तो भी ऐसा भ्रम होता मानो नींद में है, कारण कि वह शायर था, इसलिए उसका ख़्यालों में गुम रहना स्वाभाविक था, लेकिन वह यह सब कुछ कहाँ समझती थी. उसकी समझ तो बस उसे इतना बावर कराती थी कि बेटी की जवानी ज्वालामुखी जैसी होती है जो मातपिता के अंतर्मन में अभिशाप की भंति धीरे धीरे फटती रहती है.

बेटी की अगनियौवन से पिता का वजूद पुर्ण रूप से झुलसता जारहा था, फिर भी वह इस अगनि की आँच तक महसूस नहीं करता था, बस बे–फिकरी की चादर ताने शायरी अथवा गीत की रचना में मग्न रहता था.

उसे याद आया कि जब उस की आयु जवानी की ओर सफर कर रही थी तो उस के मातपिता इसक़दर असमंजस में थे कि उनकी पलकें पलकों से लगती ही न थीं, खाने–पीने का उन्हें होश तक न होता था, वह जब भी आपस में मिल बैठते, उस की आयु अथवा यौवन के ही बारे में बातें करते. उनही दिनों जाने कहाँ से ?कैसे ?उसके आँगन में एक पत्थर आकर गिरा था, यह देख

अम्मा चिंता में पड गई थीं, लेकिन बाबा ने इसे गंमभीरता से नही लिया था, कारणकि उनके निकट आँगन में इस तरह पत्थर का गिरना अर्थहीन था. अम्मा के जिरह करने पर बाबा ने उन्हें समझाया था कि हमारे आँगन में बेरी का एक पेड़ है, आँगन में यदि इमली या बेरी के पेड़ होंगे तो पत्थरों का आना यकीनी है, लड़के—बाले फलों के लालच में ऐसे ही पत्थर चलाते रहते हैं, हम भी अपने लडकपन में उन आँगनों के आस—पास ललचाये ललचाये घूमते जिन में बेरी या अमरूद फले होते.

वह सोचने लगी यह बातें तो गाँव की हैं जहां विशाल आँगनों वाले मकान होते हैं. मगर अब तो हम शहर में बस चुके हैं, वह भी ऐसे शहर में जहां आँगनों की कल्पना तक नही की जा सकती, यहां तो लोग फलेटों में कैद जिन्दगी गुज़ारते हैं, यदि किसी को पेड़—पौधों का शौक़ हूआ भी तो हॉल या राहदारी में दो एक पौधों के गमले रख दिये बस ! ..... उसके अपने फलेट में तो यह कुछ नही है, अलबत्ता बेटी ने किचन की खिड़की पर एक बोतल में धनलता (मनीप्लाँट) ज़रूर लगा रखी है, इस बारे में उसका ख़्याल है कि जैसे—जैसे धनलता खिड़की के आस—पास फैलेगी, घर में धन की बढ़ोतरी होगी. बहरहाल ! धनलता तो ख़ूब फैली, यहां तक कि समूचा खिडकी छेंक ली, किन्तु धन की मात्रा तनिक भी न बढ़ी. हाँ यह बात और कि बेटी पर यौवन का हुन बरसने लगा था.

एक दिन की बात है .... वह हॉल में बैठी चावल फटक रही थी कि अचानक उसे आभास हुआ जैसे उस के आस—पास कहीं कोई पत्थर आकर गिरा हो, वह चौंक कर यहाँ—वहाँ देखने लगी, जब कहीं कुछ दिखाई न दिया तब सोफे पर अधलेटी किसी रोमानी उपनयास में लीन बेटी की ओर देखने लगी. बेटी की सोलह साल की बाली उमरिया धीरे—धीरे खिसकते हूए बीस पार कर इक्कीसवें में छलाँग लगाने को उताऊली थी. आख़िर पत्थर गया कहाँ ?वह सोचने लगी, मुमकिन है बजाये पत्थर के कोई और चीज़ रही हो ..... यकिनन ! .... पत्थर होता तो इतनी शांती से थोड़ी गिरता .... पत्थर तो गिर कर शोर मचाते हैं, उसे याद आया कि ज़ब उसके आँगन में पत्थर गिरा करते थे तो खपरैल से टकरा के खरड़—खरड़ जैसी आवाज़ करते लुढ़कते हूए नीचे आते. कभी—कभी ओलती तले धरी बाल्टी अथवा टीन के कनस्तर पर गिर के टन की आवाज़ इस ज़ोर की पैदा करते कि सारा घर चौंक पड़ता. इसी पल टेलीफोन की

घन्टी बज उठी थी, ट्रन–ट्रन .... वह चौंक के ऐसे पलटी जैसे अब की सच–मुच कोई पत्थर आ गिरा हो. इसके बाद तो जब भी टेलीफोन की घन्टी बजती उसे पत्थर के गिरने का भ्रम होता. रह–रह कर वह अपनी इस बे–बुनियाद सोच पर लज्जित होती और असमंजस का शिकार भी कि जब इस के घर में कोई फलदार पेड़ है ही नही तो भला पत्थर कैसे आ सकते हैं .... फिर टेलीफोन की घन्टी और पत्थर दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं ...... आख़िर वह ऐसा क्यों सोचती है ?कहीं उसके भीतर भी कोई बेरी का पेड़ तो नही उग आया !

फिर धीरे–धीरे उसने महसूस किया कि बेटी अब उपनयासों तथा घर के काम–काज से कतरा रही है और अधिक समय टेलीफोन के आस–पास मंडराते हुए बिता रही है .... जैसे ही टेलीफोन की घन्टी टनटनाती है वह लपक के रिसीवर उठालेती है और अपने गुलाबी गालों से सटाते हुए माउथपीस में ऐसे फ़ुसफ़ुसाती है मानो उसका चुम्बन लेरही हो. एक दिन जब उसने बेटी की इन हरकतों का अवलोकन किया तो बजाय बेटी से कुछ पूछने–पछारने के स्वयं अपने लड़कपन की अवस्था में जा पहुंची.

उन दिनों उस की आयु सोलह–सतरह की थी, आँगन में पत्थर तो जब वह पन्द्रहवें में क़दम रखी थी तभी से गिरने लगे थे ..... एक दोपहरी वह चापाकल पर बैठी चौलाई का साग धो रही थी कि एक चंचल पत्थर आँगन की दीवार पर लटके तराज़ू के पलडे से टकराके अपने आने का एलान करता छटककर बिल्कुल उसके निकट गिरा था, पत्थर पर दृश्टि पड़ते ही उसका दिल बल्लियों उछलने लगा था, क्योंकि पत्थर के संग एक चिट्ठी भी लिपटी थी. पहले तो वह डरी फिर संभल कर इधर–उधर दीदे नचाई, अम्मा रसोई में चूल्हा फूंकने में व्यस्त थीं और चाची दालान में बैठी मूंज की डलिया बिनने में मग्न थीं, पूरी तरह इतमिनान कर चुकने के बाद भी उसे उठाते हुए वह काँप रही थी.

वैसे भी आँगन में पत्थरों के गिरने का सिलसिला आठ दस दिनों तक ही रहा, एक दिन पत्थर उठाते उसे चाची ने देख लिया था, उससे तो कुछ कहा नही अलबत्ता अम्मा के कान में कुछ फुसफुसायी ज़रूर थीं, फिर क्या था अम्मा की त्योरी पर बल पड गए, कुछ देर तक वह तिलमिलाती रहीं फिर दनदनाती हूई सीधे बाबा के पास बैठक में जा पहुंचीं. वहाँ बाबा से क्या कहा क्या सुना, पता नही. हाँ! उस रात देर तक अम्मा, चाचा और चाची के बीच खुसर–फुसर होती रही थी. फिर तीन चार रोज़ बाद चाची ही से पता चला कि अबकी बारहवफ़ात

के चाँद में वह ब्याह दी जायेगी. यह सुनते ही उसके कानों में शादियाने बजने लगे थे. क्या उसकी बेटी के कानों में भी शादियाने बजते होंगे ?यदि हाँ, तो अबतक वह ब्याही क्यों नही गई ?

बेटी की शादी को लेकर वह जब भी अपने पति से बात–चीत करना चाहती तो वह बड़ी सहजता से यह कहकर उसे चुप करादेता कि "अभी हमारे पास इतना धन कहाँ है कि बेटी को ब्याह सकें, अरे भई, हमारी एक ही बेटी है .... आखिर हमारे भी तो कुछ अरमान हैं, चिंता न करो बेग़म, इस वर्श साहित्य अकादमी का पुरस्कार मुझे ही मिलना है, एक लाख रूपयों का यह नक़्द इनाम पाते ही हम अपने सारे अरमान एक एक कर निकालेंगे और इस धूम से बेटी को ब्याहेंगे कि लोग–बाग देखते ही रह जायेंगे" पति की इन बातों से वह किसी हद तक संतुश्ट हो तो जाती परंतु उसके भीतर कहीं न कहीं यह फांस रह जाती कि बेटी के ब्याह जैसा महत्वपूर्ण धर्म केवल पुरस्कार के धन से निभाने हेतु टाल देना कैसी बुद्धिमानी है ?ऐसा भी नही कि हम इतने निर्धन हैं कि जोड़े–घोड़े की रक़्म इक्ट्ठा कर पाना हमारे लिए समस्या हो. वैसे भी हम शहर के महंगे इलाक़े में रहते हैं, उचित आय के साथ–साथ समाज में हमारी प्रतिश्ठा भी है.

पिछले कुछ वर्शों के बीच उसे साहित्य सेवा के लिए कई आंचलिक, राश्ट्रीय तथा अंतर्राश्ट्रीय पुरस्कार अथवा सम्मान प्रदान किये गये परन्तु हर बार वह बेटी के ब्याह का मामला अगले पुरस्कार तक टाल देता. इसी टालमटोल में कई वर्श पर लगाकर उड गये, तमन्नायें बेटी के गालों की शादाबी चाटने लगीं, जुल्फों की काली रात चाँदनी रात में बदल गई, आँखों का मयख़ाना वीरान होगया, मदहोश कर देने वाली सुन्दरता ख़त्म हो गई। फिर तो वह दुख से ऐसी निढ़ाल हुई कि कुछ हफ्तों ही में बूढ़ी मालूम होने लगी, जबकि उसका पति अपनी रचनाओं में जवानी की ओर बढ़ रहा था, उसका धर्म बेटी के ढलते यौवन की अनदेखी कर सरकारी पुरस्कार और सम्मान की ओर लालसा भरी आँखों से ताकता रहता, और एक वह थी जो बस रिश्तों के चरखे पर बेटी की बढ़ती आयु का धागा कातते–कातते अपनी सोच तथा चिंता की उँगलीयाँ घायल कर रही थी कि कहीं उसका पति अपने कला की अंगनाई में बेटी को बेरी के पेड़ की तरह तो इस्तेमाल नही कर रहा है, जहाँ यदा कदा पुरस्कार और सम्मान के पत्थर गिरते रहते हैं. हालांकि बेटी आँगन और बेरी के पेड़ से बेख़बर यौवन के उफनते दरीया में लाज के डोंगे पर सवार आयु की दूरी तय करते हूए उस पार तट से निकट होती जारही थी जहाँ शहनाईयों के मधुर सुर

कानों को छलते मालूम होते हैं और लाल जोडा अंगारा सा लगने लगता है।







बिजूका

मंगरू कोयरी खेत की मेंड पर बैठा बांस की दो खपचियों को सलीब की भांति मूंज की रस्सी से बांध कर अपनी स्काउट की पुरानी कमीज़ जो दो एक जगहों से मसकी हुई थी, उस पर मढ़ दिया. और सोचने लगा बाबा कोहराने यानी कुम्हारों की बस्ती से माटी की हंडिया लेकर आ जाएं तो उस पर वह पिघले हुऐ तारकोल से आंखें, नाक, मुंह अथवा मुंह और नाक के बीच बड़ी बड़ी मूंछें बनाकर सलीब के ऊपरी सिरे पर औंधा देगा....दूर से देखने वाले यह अंदाज़ा कदापि न लगा पाएंगे कि खपचियों और घास–फूस से बना पुतला है या जीता जागता इंसान है......परन्तु बाबा अब तक आए क्यों नहीं? कोहराने के लिए सवेरे ही घर से निकले हैं. कोहराना कहीं लंका में तो है नहीं, यहां से कोस भर ज़मीन है बस! फिर इतना समय! सूरज सिर पर चढ़ आया....... धूप शरीर को झुलसाने लगी है. जबकि बाबा स्वयं जेठ–बैसाख के दिनों दोपहर के समय सीवान में रहना या आना–जाना ठीक नहीं समझते. उन का मानना है कि इस बेला भूत पिशाच की सवारी निकलती है जो सीवान सीवान भटकती है.

भूत के कलपना से उसके भीतर कंपकंपी दौड गई और उसके माथे पर भय की नन्हीं नन्हीं बूंदें उबल आई. फिर अगले ही पल उसने स्वयं को समझा लिया. सीवान के राजा तो नटवा के बीर बाबा हैं......... मिटठू चच्चा बताते हैं, सीवान में जो कभी रात बिरात डर लगे तो बस आंखें मूंद कर नटवा के बीर बाबा को याद कर लो .

... इस ख्याल के आते ही उस ने झट आंखें मूंद ली और 'जय हो नटवा के बीर बाबा 'का जाप करने लगा. थोडी देर के पक्षात जब आंखें खोलीं तो सामने के चकरोड से ठाकूर रामपाल को मोटर साईकल पर जाते देख कांप उठा।

ठाकुर रामपाल को देखकर बस्ती का हर छोटा बड़ा आदमी ऐसे ही कांपने लगता था. जबकि ठाकुर रामपाल इस गॉव के थे नहीं. वैसे भी यह गॉव ठाकुरों का नहीं था. गॉव में बस चार छः घर कोयरी, तीन चार घर कोहार, पॉच छः घर पासी आठ दस घर लोहार लग–भग इतने ही घर् जुलाहों के थे. पता नहीं कैसे आबादी की जगह ठाकूर रामपाल ने कब्जा़ कर लिया था और इसी बहाने वह गॉव में आने–जाने लगे थे. कद–काठी से अच्छे थे. खाया–पिया शरीर था. सीना भी गज भर से कम न था. इस पर बड़ी–बड़ी मूछें चेहरे के रोब में बढोतरी करती थीं. मतलब कि ठाकूर रामपाल जिस किसी की ओर निगाह उठा देते वह झट हाथ जोड़े उनके समक्ष आ पहुँचता, फिर उनका जो भी काम होता वह चुपचाप बिना कुछ कहे कर देता। जी में आता तो कूछ दे देते नहीं तो न भी देते, किस में इतना बूता होता, जो मुँह खोलकर मजदूरी मांग लेता, इसी कारण उनका काम धीरे–धीरे बढ़ता गया था. और वह आबादी वाली जगह से निकल कर बस्ती में भी पॉव पसारने लगे थे. जैसे राम औतार लोहार के कूँए में टयूब–वेल की बोरिंग करवाली, महगूँ कहार की ज़मीन पर चक्की गड़वा दी, किसी की ज़मीन पर आमों का बाग लगवा दिया, किसी का खेत परती पड़ा देखा तो धान छिटवा दिए. हालांकि उन्होंने कभी किसी पर हिंसा या अत्याचार नहीं किया था. और न ही दूसरे ठाकुरों की तरह उनके पास लठैतों की टोली थी. बस वह अपने रोबदार व्यक्तित्व और राजपूताना आन–बान के चलते लाभ उठा रहे थे. मंगरू सोचने लगा. हम छोटी जाति के लोग आखिर कब तक ठाकुरों के दबाव में रह कर उन की चाकरी करते रहेंगें ?कब तक उन की ठकूराई का रोब बर्दाश्त करते रहेंगें ?कब तक डर व भय की चिता में अपना स्वाभिमान जलातें रहेंगे ?आखिर ठाकुर भी तो हमारी ही तरह एक इंसान हैं! फिर हम में और उन में इतना अन्तर क्यों ?

अभी वह सोचों के नाखून से प्रश्नों की गुत्थी सुलझा ही रहा था कि सामने नम्बरदार के बाग़ीचे की ओर से उसे बाबा सिर पर बड़ी सी खांची रखे और एक हाथ में हंडिया लटकाए डगरहां गॉव के चिरईया दाहा की भांति डगर–डगर हिलता–डुलता आता दिखाई दिया. मंगरू बाबा को इस दशा में देखकर झट हांक लगाते हुए उस ओर दौड़ पड़ा, "बाबा वहीं ठाड़ रहो..... हम आवत हूँ."

निकट पहुँचकर झट गम्छा सिर से बांध कर मोढ़ा बनाया और बाबा के सिर से खांची अपने सिर पर लेली..... " बेफजूल खांची मा का उठा ली आए ?"

बाबा ने कुछ कहने से पहिले एक लम्बा सांस खींचा फिर सिर से गम्छा खोल कर हथेली से तालू सहलाया, पसीना पोछा और पास ही महुवे की उभरी हुई जड़ पर बैठते हुए बोला.

"कोहराने से हंडिया लैके लौटत रहे, डगरा पे अलगू चौधरी भेंटा गए, उनहीं से बतकही होय लागी तब ले ठाकुर बाबू जाने कहां से उहां आ पहुँचे..... पूछै लागे मलिकार कहां बस्ती जात हो ?हम कहा नाही सिवान जात हूँ, एकठो हंडिया चाहत रही वही खातिर कोहराने गए रहे....... कहे लागे अरे मलिकार एकठो हंडिया खातिर कोहराने जाए का कौन जरूरत रही, हमसे मांग लिए होते, चलो पा गए न..... काम होवै से मतलब ? जब हम उहां से चले लगे तो ठाकूर बाबू बोले, "अरे मलिकार जात–जात तनी दुइ परग बढ़ के हमरे घरवां चल जाओ, मड़ईया में खांची भर गोबर धरा है ले जा के हमरे चकवा में फेंक देना" हम तो कहे भई कबाहट ......फरलांग भर ज़मीन चलके इनके घरे जाओ, फिन मन भर बोझ लाद के कोस भर ढ़ोओ. साच कहत हूँ बेटा, मन में आवा कि नकार दें बकिन ई सोच के कि ठाकुरन से दुस्मनाई लेब ठीक नाहीं. जाके उठाई ली आए, यही से तनिक अबेर हो गवा"

मंगरू को बाबा की गाथा सुन कर क्रोध तो बहुत आया लेकिन कहा कुछ नहीं, बस चुप–चाप आगे बढ़ गया. बाबा भी उठकर उसके पीछे–पीछे चलने लगा. मंगरू अभी बीघा दो बीघा ज़मीन ही चला था कि उसे खांची के बोझ का अन्दाज़ होने लगा और वह सोचने लगा कि इतना वजन उठा के कोस भर ज़मीन

चलने में बाबा पर क्या बीती होगी ?ठाकुर को भी तो आदमी देख के काम बताना चाहिए था. क्या वह बाबा की दशा नही देखता ? छटांक भर भी तो मास नहीं है उनके देह पर ...... चकरा के गिर गिरा जाते तब ? ठाकुर के बाप का क्या जाता ?हड्डी पस्ली तो बाबा की टूटती ना! और उस का खून खौलने लगा.... जी में आया कहीं से कट्टा हाथ लग जाए और वह एक ही फायर में ठाकुर का काम तमाम कर दे. न रहे बांस न बजे बांसूरी!.... क्या होगा ? चार छः बरस जेल ही तो खटना होगा ?वह भी पकड़े गए तब! वह ऐसे ही सोचते–सोचते अपने चक में चला आया, और सिर से खांची उतार कर मेड पर रख दी..... मोढ़ा खोलकर गम्छा झटका फिर चहरे से पसीना पोंछा और बाबा के हाथ से हंडिया लेकर मेड़ पर पलथी मार कर बैठ गया, बाबा भी चुप–चाप खुरपी लेकर भिन्डी की क्यारी सोहने लगा.

मंगरू मिट्टी के खपटा से हंडिया पर पहले आंखें, नाक और मुँह बनाया और बांस की कूंची तार कोल में डुबोकर उन्हें रंग दिया. फिर नाक और मुँह के दरमियान बड़ी–बड़ी मूछें बना दी बिल्कुल ठाकुर रामपाल के मूछों की भांति! फिर हंडिया को सलीब के ऊपरी छोर पर औंधाकर खेत के बीचों बीच गाड़ दिया, कुछ पल वहीं खड़े–खड़े उसे निहारता रहा. फिर बाबा के निकट आकर भाव विभोर स्वर में कहा,

"बिजूका लग गवा बाबा" और वहीं से उस पर एक कलात्मक दृश्टि डाली. यकबारगी उसे ऐसा आभास हुआ मानो वहॉ बिजूका नही बल्कि साक्षात ठाकुर रामपाल हों जो स्काउट की परेड करते हूए संशीत हो गए हों...बाबा ने माथे पर हथेली का छज्जा बना कर चुंधियाई ऑखों से देखते हूए कहा "बढ़िया बन गवा"

"बढ़िया बन तो गवा, बकिन बाबा ई बताओ कि खेतन मा बिजूका लगावा काहें जात है ?"

"खेत के जनावर से बचावे खातिर......बिजूका के आदमी जान के गोरू चौवा डेरात हैं"

"डेरात काहें हैं बाबा ?बिजूका त बॉस के फलटा आउर घास–फूस

से बना होत है, गोरू–चौवा चाहें त आन की आन मा गिरा–परा के तोड़–ताड़ नावें ?"
मंगरू के इस प्रश्न पर बाबा के अधरों पे अर्थपूर्ण मुस्कान रेंगने लगी और वह एसे ही मुस्काते हूए बोला। "तोहार कहनाम ठीक है बेटा, बकिन जेके डर कहा जात है न ऊ सच्चाई का भेद खोलय नाही देत........भला बताओ हमा–शुमा सिपाही दरोगा के देख कॉहें डेरात हैं ? ऊ कौनो दईत–सैतान तो हैं नही, अदमिये हैं नां ?"

मंगरू सोचने लगा बाबा ठीक कहते हैं.....भेद ही से आदमी का मान–सम्मान अथवा भरम बना रहता है.....नही तो आदमी है क्या ?? दो हाथों, दो पैरों, एक सिर और एक धड़ का संग्रह! ठाकुर की भी तो बस यही औकात है......फिर हम उस से डरते क्यों हैं ?.... शायद हम उसके भेद नही जानते, इस लिए ..... जैसे जानवर बिजूका के भेद से अन्जान उस से भयभीत रहते हैं .... आखिर बिजूका में है क्या ? उस का सारा भेद तो स्काउट की उस पुरानी कमीज़ में ढ़का है ...... लेकिन ठाकुर रामपाल का भेद कहां छुपा है ? शायद उसकी कद–काठी, बड़ी–बड़ी मूछों और रोबदार व्यक्तित्व में ! यदि सत्य में ऐसा है तो ठाकुर रामपाल और बिजूका में अन्तर क्या रहा ?ठाकुर रामपाल बिजूका है अथवा बिजूका ठाकुर रामपाल ?........... और यह प्रश्न उसके मस्तिश्क में शूल की भॉति धंस गया।

दोनों बाप बेटे घर आये. धूप की ताप ने दोनों को पसीने से तर कर दिया था, एसा प्रतीत होता था मानो दानो गर्मी से परेशान हो पोखर में डुबकी लगा आये हों. मंगरू तो उसारे में आते ही झट शरीर से बन्डी अलग की, निचोडी और उसी से शरीर पोछने लगा. जबकि बाबा ने खूंटे से बंधी गाय की पघईया खोलकर उसे नांद से लगाया, दौरी भर चोकर नांद में डाला और बाल्टी उठाकर कुएँ की ओर चल पड़ा।

बाबा जब उसारे में आया मंगरू उघारा देंह चारों खाने चित

ऑखें मूंदे जमीन पर लेटा था। उसका सारा शरीर धूल मिट्टी से अटा था। बाबा ने उस पर एक उचटती सी दृश्टि डाली और होले से पुकारा "मंगरू ... ऐ मंगरू !"

मंगरू पलकें पटपटाते हूए बाबा की ओर देखा किन्तु मुख से कुछ कहा नहीं, बाबा ने खूंटी से अपनी जांघिया और धोती उतारी, फिर बाल्टी उठा कर कहा "चल बेटा, हाली से नहा लिया जाए..... खा–पी के घन्टा आध घन्टा सुस्ता के, ऊ बेला से एक बॉह ऊँख आउर गोड दिया जाय"

मंगरू बाबा की बात सुनी–अनसुनी किए जस का तस पड़ा रहा. उसके मस्तिश्क में तो बिजूका समाया था और मन में चेतना की अज्ञात किरचियॉ बिखर कर चुभन बन गई थीं. यदि वह किसी तरह मस्तिश्क से बिजूका को हटाता, झट उस स्थान पर ठाकुर रामपाल की छाया प्रकट हो जाती। एसे में उसकी व्याकुलता बढ़ जाती तथा चुभन टीसें बन कर उसके अस्तित्व को झनझना देती.

बाबा नहा कर आगया था, उसे अब भी लेटा देख बरस पडा "का रे मंगरूआ, आज तोके मलिच्छ घेरे है का ?उठ बेटीचोद.....जो झट से नहाईयाव"....मंगरू अलकसा के उठ खडा हुआ, पलंगडी से गमछा उठाया और बाहर निकल गया.

रात के भोजन में भी मंगरू का जी न लगा, बस चार छः कवर खा के उठ गया. बाबा ने टोका भी "का रे मंगरूआ... का बात है आज एक्को लिटटी न खाए ?"

"पता न कॉहें आज भुखिये मर गइ बाबा" कहते हुए बाहर निकल गया और अनायास ही समूचे गॉव का एक चक्कर काट आया. कुछ देर लोकई कक्का की चौपाल में भी बैठा .... क़िस्से कहानियों में मन न लगा तो उठ गया और सीवान की ओर निकल गया.....सीवान से जब लौटा, गॉव में सूता पड चुका था, चौपाल में भी सन्नाटा पसरा था. परन्तु कुत्तों के भोंकने अथवा सियारों की हूवॉस से ही जिन्दगी का आभास होता था. वह चौपाल के चबूतरे पर बैठ गया. न जाने क्यों उस का जी घर जाने को नही चाह रहा था. जबकि उसका

शरीर थक चुका था, इन्द्रियाँ भी सुस्त पड गई थीं, ज़ेहन भी माऊफ हो चुका था। य़कायक उस की नज़र चौपाल के एक कोने में बिछी चारपाई पर पड़ी और वह लपक के चारपाई पर पसर गया। इसी पल उसे बाबा का ख़्याल आया, कहीं वह उसे खोज न रहे हों ?... फिर उसने स्वयं ही अपने इस ख़्याल का खंडन कर दिया, खोजेंगे क्यों ? द्वार पर चारपाई डाले मजे से सो रहे होंगे, आखिर दिन भर के थके जो हैं।
"मंगरू....तू भी तो थका है" उसके भीतर से आवाज़ उभरी। "सबेरे संझा मिला के कुल दसन बिस्सा ऊँख गोडा है......ऊँख गोड़ना कोई मजाक बात है का.... झुके-झुके कमर दोहरी हो जाती है। झुकी हुई गरदन तो उपर उठने का हाल ही नही जानती.....कुदाल थामे-थामे हथेली पे फूंका पड जाता है"... मंगरू ने सोचा "बात तो ठीक ही है, हो सकता है बाबा भी जाग रहे हों और उसकी बाट जोह रहे हों .... अब जो घर गया तो बिगडेंगे जरूर.....बिगडेंगे तो सबेरे भी! ... सबेरे बहाना गढ़ देगा, कह देगा कि महासिंघ के पूरा में दरभंगा की नौटंकी आई थी वही देखने चला गया था। वह एसे ही सोचता रहा और नींद की लालसा में करवटें बदलता रहा, किन्तु नींद थी कहाँ ?नींद तो उसकी पलकों के आस-पास फटकने को भी तैयार न थी, शायद् नींद की देवी उस से रूठ चुकी थी, अथवा उसके भेद से परिचित हो चुकी थी...... वह रात के किसी पहर सो भी पाया था कि नही .... पता नही! परन्तु रात जब जाग्रत हुई, मुर्गे ने बॉग दी, पक्षी अपने-अपने ठोर ठिकानो से बाहर निकले, गॉव ने अंगडाई ली, जरूरतों ने ऑखें मलीं.....चक्की की घमर-घमर, मूसल की धमक और पनघट की हलचल के साथ-साथ पगडंडियों की चहल-पहल बहाल हूई. फिर धीरे-धीरे समूचा गॉव चौपाल के आस-पास सिमट आया, जहॉ मंगरू खुरी चारपाई पर पड़ा बेखबर सो रहा था और उस के पैताने एक बिजूका खड़ा था......बड़ी-बड़ी मूछों वाला। जिस पर स्काउट की कमीज की जगह खदद्र का सफेद कुर्ता मढ़ा था और उसकी पृश्ठ पर तारकोल से 'ठाकुर रामपाल' लिखा था।




Studio

छलाँग

धारावी की झुग्गी झोपड़–पट्टी से बॉद्रा हिल रोड के आलीशान फ्लैट तक अचानक भैया ने कैसे छलाँग लगा ली ? उनके हाथ कहीं अलादीन का चिराग़ तो नहीं लग गया, जिसे ज़रा सा घिसा और एक लम्बा–तड़ंगा जिन हाज़िर....."क्या अदेश है मेरे आक़ा....?"

"हमारी इस झुग्गी–झोपड़ी को जहॉ के कोने–कोने से बिसाँध और सड़ांध के भभके उठते रहते हैं. एक विशाल महल में परिवर्तित करके अतर अथ्वा फुलेल से सुगंधित कर दो...."

गुलाम आज्ञा का पालन करने में अस्मर्थ है मेरे आक़ा..."

"क्यों ,क्या दिक्क़त है....?"

"क्षमा किजिए मेरे आक़ा......राजे–रजवाड़ों के साथ ही महलों के युग का विनाश हो चुका.."

इससे क्या मतलब....... ?

"मतलब है मेरे आक़ा. क्योंकि इंसानों की बढ़ती आबादी ने धरती को संकीर्ण कर दिया है. अब धरती की कीमतें आकाश छूने लगी है. इसी कारण आज के युग में गगन चुम्बी ईमारतों का निर्माण हो रहा है और ऐसी ईमारतों का निर्माण अब हम जिनों के बस में नहीं रहा"

"आख़िर क्यों ?तुम तो इंसानों से कहीं ज़्यादा बलवान्न हो, आन की

ान में कुछ भी कर गुज़रने का सामर्थ्य है तुम्हारे पास ......"
"है नही, था मेरे आक़ा ..... लेकिन शारीरिक बल से कहीं ज़्यादा दिमाग़ी शक्ति प्रभावकर होती है. आज इंसानी दिमाग़ ने प्रगति व उन्नति के वह–वह कमाल दिखाए हैं कि हम जिनों का अस्तित्व का कोई अर्थ ही नही रह जाता....."
"यह क्या बकवास ले बैठे.....?"
"बकवास नहीं सत्य है मेरे आक़ा, सेटलाईट और इंटरनेट के अविश्कार ने दुनिया को ग्लोबल गॉव में बदल कर रख दिया है. अब मनुश्य महीनों का काम मिंटों में करने
"अर्थात अब तुम मिंटों का काम महीनों में करना चाहते हो ?......"
"समय सीमा तो काम के अनुसार ही तय की जा सकती है मेरे आक़ा"
"मेरे इस काम के लिए तुम्हें कितना समय दरकार है.....?"
"गुस्ताख़ी माफ मेरे आक़ा...... गुलाम पहले ही अर्ज़ कर चुका है कि महलों का युग बीत चुका..... महलों का दूसरा रूप कोठियों की थी. सो वह भी कहीं कहीं ही दिखलाई पड़ती हैं......"
"समझ गया.... अच्छी तरह समझ गया कि अब तुम मुझे उस झुग्गी झोपड़ी की गन्दगी से निकालने के पात्र नहीं रहे......"
"ऐसा नहीं है मेरे आक़ा ......महलों के स्थान पर किसी शानदार फलैट में स्थानांतरित करने की क्षमता अब भी मुझ में हैं. बस आप आदेश करें...."

भैया का वह फलैट मेरे ज़हन से उलझ कर रह गया था. ख़्यालों में आँखें न जाने क्या क्या देखने लगीं थीं. पता नहीं क्यों भैया का इस तरह एक ही जस्त में धारावी के स्लम से बांद्रा के हाई–फाई सोसाईटी में रिसाई मुझे खलने लगी थी. उठते–बैठते, खाते पीते, सोते जागते, बस यही सवाल ज़ेहन में गूंजा करता कि भैया को यह जादुई चिराग़ कैसे अथवा कहाँ से हासिल हुआ ?जबकि मैं और भैया साल भर के आगे–पीछे ही इस महानगरी की माया जाल में आन फंसे थे. भैया कॉमर्स से ग्रेजुवेट थे. कद काठी अच्छी थी, खुलता रंग, चहरे की बनावट लुभावन थी, बोल चाल का भी उन का अपना अन्दाज था, अंग्रेजी बोलते तो अंग्रेज मालूम होते, शायद इसी सबब उन्हें एक केन्टीन कन्ट्रेक्टर जिस के लग–भग तीस कम्पनियों में ठीके थे, एक

ब्रीटीश कम्पनी की केन्टीन में मैनेजर रख लिया.

कन्ट्रेक्टर मीर चन्दानी सिन्धी था, दरमियाना कद, भारी शरीर, तोन्दीयल, चुन्दीया से एक चौथाइ केश गायब थे, तनहा ज़िन्दगी गुज़ार रहा था, उस पर जोरु न जाता अल्लाह मियाँ से नाता वाली उपमा सटीक बैठती थी. ऐसा भी नही कि उस की कुंडली में जोरु का संजोग न था, उस के क़रीबी बताते थे कि उस का ब्याह हुआ था, लेकिन, दुल्हन का सुख अभी भोग न पाया था कि वह ग़ायब हो गई थी, फिर तो ब्याह से ऐसा बिचका कि कभी दुल्हन का सपना तक न देखा, हाँ! यह बात और कि उसने दुसरे बहुत से लोगों के ब्याह करवाये ज़रुर ! उसे दूसरों के सिर पर सहरा बंधते देख बहुत खुशी होती.

धीरे–धीरे भैया ने मीर चन्दानी के दिल में ऐसी जगह बनाई कि साल बीतते–बीतते उन्हें केन्टीन की मैनेजरी से तरक्क़ी दे कर सर्वे आफिसर के पद पर नियुक्त कर दिया. पगार भी तीन हज़ार से बढ़ा के पांच हज़ार करदिये, फिर तो भैया ने मुझे भी बुलवा लिया। मैं गाँव में खेती–बाड़ी के काम से लगा था, सब छोड़–छाड़ झट–पट मुम्बई आगया और केन्टीन की सुपरवायज़री में ऐसे जुता कि बस!

मुम्बई जैसा दरिया दिल है वैसे ही तंग–दामन भी है, यानी यहां रहने की समस्या कठिन है. मुझे अच्छी तरह याद है कि धारावी की वह झुगी हासिल करने में हम दोनों भाइयों को दांतों पसीना आगया था, किन्तु अब भैया का बांद्रा जैसे पॉश इलाक़े में फलेट, वह भी बगैर किसी दिक्क़त के ! हालांकि ऐसा भी नही कि भैया की पगार या उपरी आमदनी इतनी बढ़ गई हो कि वह सहजता से फलेट अफोर्ड कर सकते हों. मुझे सुत्रों द्ववारा यह तक पता चल चुका था कि उस फलेट का सोसाईटी मेन्टेनेन्स भैयों की पगार के बराबर है. मैं हैरान था कि आख़िर भैया को फलेट की आवशयक्ता क्यों आ पड़ी ? यदि धारावी की गन्दी बस्ती से निकलना ही मक़सद था तो कुर्ला के टेक्सी–मेन्स कालोनी या कपाड़िया नगर में भी फलेट ले सकते थे. तात्पर्य ये कि भैया का फलेट मेरे मस्तिश्क में बस गया था, सोचें हर

पल इसी फलेट के आस पास चक्कर काटती रहतीं और मैं यह भेद जानने के फिराक में दिन बेचैनी में तथा रातें करवटें बदलते गुज़ार रहा था कि एक दिन भैया के लगन की खूशखबरी कानों में रस घोल गई। काफी शोध और छान बीन के बाद यह ज्ञात हूआ कि मीर चन्दानी ही की मर्ज़ी पर भैया एक गुजराती कुमारी को जीवन संगीनी बनाने पर राज़ी हूए हैं, जबकि दो वर्श पश्चात गाँव के भोलू पहलवान की बेटी लीलावती से सगाई हो चुकी है, फिर भोलू पहलवान अपनी बिरादरी के हैं और भैया हैं कि यहां ग़ैर बिरादरी में ....? परिवार की मर्यादा का क्या होगा...... बिरादरी में थू–थू तो होगी ही .... लोग बाग हुक्का–पानी का नाता तोड देंगे......भैया को यह बातें बताने की कोशिश भी की लेकिन उन्होंने मेरे कहे पर कान नही धरा और प्रोग्राम के मुताबिक़ विवाह के बंधन में बंध गए.

विवाह में होने वाले सभी खर्च मीर चन्दानी के ज़िम्मे था सो उसने उस में कोई कमी नही की थी, साज–सज्जा से लेकर खान–पान की व्यवस्था उच्च स्तर की थी. बरात तो इस धूम–धाम से निकली थी मानो किसी धन्ना सेठ की हो। सुहाग रात के लिए होटल ताज में पूरा एक सूट बूक था। दुल्हन के सिंघार पटार में कई मश्शतायें लगी थीं, उन्होंने उसे ऐसे संवारा था कि देखते बनता था। वस्त्र के नाम पे शरीर पर एक बिकनी थी और नग्नता पर बडे ही नफासत से हीरे–जवाहिरात के गहनों की पैवन्दकारी की गई थी. बहरहाल ! दुल्हन अभी सजने–संवरने की क्रिया ही में थी तथा दुल्हे के मन में दुल्हन से मिलाप के लड्डू फूट ही रहे थे कि मीर चन्दानी के मोबाईल का बज़र घनघनाया...... उसने मोबाईल पर क्या बात की ...... कॉल करने वाला कौन था ..... पता नही! किन्तु उस पल सब के सब चौंक पड़े थे जब मीर चन्दानी के हाथ से मोबाईल गिर पड़ा और वह दोनों हाथों से अपना सिर दबोचे सोफे पर ढ़ेर हो गया. उसकी यह दशा देख भैया भीतर ही भीतर कांप उठे थे.

मीर चन्दानी से काफी पूछ–गूछ के बाद पता चला कि वह फोन कॉल गोवा से थी, वहाँ केन्टीन स्टाफ और कम्पनी वरकर के

बीच किसी बात पर तू–तू मैं–मैं हो गई, बढ़ते–बढ़ते नौबत हाथा–पाई तक आ पहुँची और इस बीच कम्पनी के वरकर का सिर दीवार से लड गया और वह जगा पर ही दम तोड दिया. यह सुनते ही भैया के चहरे पर हवाईयां उड़ने लगी थीं, कनपटियों से पसीने की नन्ही–नन्ही बून्दें उबल कर गरदन पर ढलक आई थीं. इस से पहले कि वह इस समस्या पर विचार करते मीर चन्दानी का डूबा–डूबा स्वर उभरा. ''कैलाश, तुम सर्वे आफिसर हो, इस मुआमले को बखूबी निपटा सकते हो, इस से पहले कि पुलिस के हाथ मेरे गिरेबान तक आए तुम फौरन गोवा के लिए निकल पड़ो। भला भैया उसका आदेश कैसे टालते, हसरत से एक नज़र सुहाग सेज की ओर देखा और निकल पड़े. उनके जाते ही मीर चन्दानी ने राहत की सांस ली और ऐसे उठ खड़ा हुआ जैसे कुछ हुआ ही न हो।

रात का गजर बारह बजने का एलान किया। लोग–बाग जो वहां मौजूद थे अपनी–अपनी कलाई पर बंधी घड़ीयों पर निगाहें गाड़ीं, फिर एक–एक कर वहाँ से खिसकने लगे. चूंकि मैं दूल्हा का अनुज था और दुल्हन जो आठ दस घंटे पहले तक मेरे लिए अजनबी थी, अब मेरी भाभी बन चुकी थी, इस नाते मेरा वहाँ रहना अनिवार्य था, मीर चन्दानी भैया का अभिभावक था इस लिए वह भी डटा रहा। हम दोनों के अलावा भीतर सुहाग सेज पर मेरी नई–नवेली भाभी थी और ज़हन सोच रहा था कि समय भी कैसे–कैसे खेल दिखाता है कि पल भर में खुशियाँ काफूर हो जाती हैं, सुःख दुःख में बदल जाते हैं, तमन्नायें प्यासी रह जाती हैं, अरमानों का ख़ून हो जाता है।

''अरे भाई कहॉ खो गए ?'' मीर चन्दानी की आवाज़ पर मेरी सोचों का तार टूट गया.

''आँ .... हाँ .... बस ऐसे ही''

''बस ऐसे ही क्यों ?कहो तो तुम्हारा भी ब्याह रचा दिया जाए''

''नही सर, अभी मैं किस लायक़ हूं''

''ब्याह से पहले पुरूश किसी लायक़ नही होता, लेकिन जोरू के आते ही उसके भीतर हर प्रकार की क़ाबलियत प्रवेश कर जाती है''

कहते हूए मेरी जांघ पर चुटकी काटा और अर्थपुर्ण निगाहों से देखते हूये खिलखिला कर हंस पड़ा, उसे इस प्रकार ख़ुद से सहज होता देख मैं ने सहमे–सहमे स्वर में उसके अपने विवाह के बारे में पूछ लिया. वह चौंक पडा और शंका भरी निगाहों से मेरी ओर देखते हूए पूछा. ''मेरे विवाह से संबधित क्या जानते हो तुम ?''
''कुछ अधिक नही सर ...... बस इतना कि आप भी पवित्र अग्नि के फेरे ले चुके हैं''
''और ?''
''और .... और .... और यह कि ......''
''हाँ–हाँ बोलो, घबराओ नही'' उसकी जिज्ञासा बढ़ गई थी.
''और सर .... दुल्हन .... दुल्हन सुहाग सेज पर पहुंचने से पहले ग़ायब हो गई थी''
''ग़ायब नही, भाग गई थी'' क़रीबन वह चींख़ उठा था.
''भाग गई थी !'' मैं बुदबुदाया.
''हाँ !''
''लेकिन सर, उसे जब भागना ही था तो विवाह के लिये हामी क्यों भरी थी?पवित्र अग्नि के फेरे क्यों लिये थे ?''
''ताकि वह भाग सके'' उसके मुंह से झाग उड़ने लगी थी. ''जानते हो किस के साथ भागी थी वह?''
''नही सर''
''अच्छा अन्दाज़े से बताओ, किस के साथ भागी होगी ?''
''सर, औरत धन पर रिझती है, ईश्वर की दया से यह तो आप के देवढ़ी की लौन्डी है, मुमकिन है अपने किसी बॉय फ्रेन्ड के साथ... !''
''नही, तुम्हारा अन्दाज़ ग़लत है. बॉय फ्रेन्ड के साथ तो विवाह से पहले भी भाग सकती थी'' मेरा वाक्य पुर्ण होने से पहिले ही बोल पडा था.
'' आख़िर किस के साथ भागी होगी'' मैं बुदबुदाया.
''मेरे बाप के साथ'' वह पूरे फोर्स के साथ बोला.
'' आं !'' मैं चौंक पड़ा.
''चौंको मत, मेरा बाप उस लड़की का दीवाना था और वह उसके साथ...... ! लेकिन वह दुल्हन बनने से पहले ऐसा कुछ करना नही

चाहती थी, इस लिए मेरे बाप ने उसे मुझ से ब्याह दिया, फिर ले उडा। जानते हो, वह उसे लेकर कहाँ गया ?''
इस से पहले कि मैं कुछ कहता वह स्वयं ही बोल पड़ा.
''इसी होटल में ले आया था''
''इसी होटल में !'' मैं एक बार फिर चौंका।
''हाँ ! और..... और इसी कमरे में''
कहते हुए उसकी आवाज़ रोवांसी हो गई थी, आँखों के कोने भीग गए थे। फिर जैसे उस पर चुप की मुहर सी लग गई। मेरी दशा भी कुछ अजीब सी होती जा रही थी, इसके बावजूद कुछ और जानने की ललक भीतर ही भीतर अंगड़ाई ले रही थी कि आख़िर उस लड़की का क्या हुआ ? क्या वह उस बूढ़े के साथ सुःख शान्ती से निबाह कर सकी होगी ?'' ऐसे ढेरों प्रश्न ज़ेहन में कुलबुलाने लगे थे, शायद इसी कारण मुझ पर नींद का ग़लबा तारी होने लगा था। मैं ने अधखुली आँखों से मीर चन्दानी की ओर देखा, वह सोफे पर लुढ़क चुका था। मैं उठा, सदर दरवाज़ा जो केवल भिड़ा हुआ था उसे बोल्ट किया, नाईट लेम्प जलाके कमरे के सभी बल्ब बुझा दिये, फिर चुपके से सुहाग सेज वाले कमरे में झांका, दुल्हन सेज पर ऐसे छूईमूई बनी बैठी थी मानो अब भी उसे अपने सपनों के राजकुमार के लौट आने का यकीन हो। मुझे उस की इस दशा पर बड़ा तरस आया, इस के अलावा मैं करता भी क्या ?मजबूरन उलटे पाँव आकर दीवान पर लेट गया। आँखें कब लगीं..... पता नही..... हाँ ! जब आँखें खुलीं पौ फट रही थी, मैं उठ बैठा, अरे ! ये क्या ?मीर चन्दानी सोफे पर मौजूद नही था, कहाँ चला गया ?ज़हन में सवाल मचला, शायद टॉयलेट या बाथरूम में हो, यह सोच मैं ने जेब से सिगरेट की डिबया निकाली, सिगरेट सुलगाकर पहला कश खींचा ही था कि यकायक सुहाग सेज का दृश्य आँखों के आगे नाचने लगा. वही लजाई सिमटी बैठी दुल्हन, आँखों में इन्तेज़ार के काँटे...... क्या वह ऐसे ही सारी रात बैठी रही होगी ? ज़ेहन में सवाल गूंजा. मुमकिन है ....हमारा संस्कार तो यही है। दिल ने उत्तर दिया, किन्तु मुझे इतमिनान नही हुआ, आँखों से देखने की ललक भीतर ही भीतर बाल हट की भांति मचलने लगी. सोचा इससे पहले कि मीर चन्दानी

टॉयलेट से निकल आए क्यों न चुपके से एक नज़र सुहाग सेज वाले कमरे में डाल लूं तथा देखूं कि दुल्हन वैसे ही बैठी अपने सपनों को आंसूवों में बहाती आँखों ही आँखों में रात बिता दी अथवा उसे खूशियों का छलावा जान कर अपनी तक़दीर की भांति स्वंय भी सो गई है, और मैं पलक झपकते ही उस कमरे की दहलीज़ पर पहुंच गया.....फिर ....फिर मेरे क़दमों को जैसे काठ मार गया..... आँखें जलने लगीं..... शरीर में काँटे धंसने लगे, फिर अचानक भैया का फलेट मेरी निगाहों में घुमने लगा. इसके बाद तो एक–एक कर कई बरातें मोन्टाज के रूप में उभरने डूबने लगीं। अंतिम मोन्टाज पर सुहाग सेज का दृश्य सूपर–इम्पोज़ हूआ। दृश्य अभी पुर्ण रूप से स्पश्ट हो भी न पाया था कि विपरीत दिशा में कुछ दूरी पर एक मर्दानी छाया उभरी, जिसकी मुखाकृति मीर चन्दानी से मिलती जुलती थी, जबकि दोनों दृश्य अपनी–अपनी जगह मौन और अचल थे, परन्तु कुछ पलों बाद दोनों के मध्य की दूरी धीरे–धीरे घटने लगी. शायद वह छाया सुहाग सेज की ओर खिची आरही थी अथवा सुहाग सेज स्वंय उस ओर खिचा जारहा था, पता नही !





धरती के संस्कार

श्रावन कुमार पिता के चरणों में गिर कर तड़ातड़ माथा पटक रहा था और ऐसे बिलख–बिलख के रो रहा था कि देखने वालों का कलेजा फटने लगता, परन्तु पिता का दिल ऐसा कठोर होगया था कि रत्ती भर भी पसीजता न था। पास पड़ोस के लोग जो उसका रोना पीटना सुन के इक्ट्ठा होगये थे, अटकलें लगाने लगे थे कि माजरा क्या है ?आखिर वह किस प्रकार के पश्चात्ताप में मुबतिला है ?उस से ऐसी कौन सी चूक होगई है कि वह पछतावे के आँसूओं से पिता के चरणों को धो देना चाहता है। वह रोते–रोते घिघीयाने लगता "बप्पा चाहे हमार जान मारि नाओ, लेकिन हमका माफी दयदो" इस पर उसका पिता क्रोध से तिलमिला कर उसकी पीठ पर लात से ठोकर लगाते हुए अपशब्द बकने लगता "हरामखोर ..... बेहया .... नीच चल भाग इहाँ से ......

देखने वालों की अटकलें जब नाकाम होगई और समझ में कुछ न आया तब एक ने पूछने की हिम्मत जुटाई "चच्चा, बेटा शहर से कमा के लौटा है आउर तूं हो कि ओके भगावे पे तुले हो ?"

"ई बेटा नाहीं, कलंक है कलंक" पिता ने गुस्से से दांत पीसा।
"आखिर बात का है .... कुछ हम लोगन के भी तो पता चले ?"
दूसरे ने भी प्रश्न किया।
"हाँ भाई, यदि कौनो गलती–सलती करदिये हो तो माफ करदेव .... . छोटवार लडका जो जांघ पे टट्टी फिर दे तो जांघ काट के फेंक तो नही दिया जात ?" एक बूढ़े ने दलील दी।
"लेकिन बाबा सयान लडका कपार पे चढ़ के टट्टी फिर दे तब ?"
"तब ई बदमाशी कहायेगी"
"तो ई बदमाशी का कौनो दंड भी है ?"
"जो दंड दैदो ऊ कम है"
और पिता क्रोधित हो एक लात उसकी पीठ पर जमा दिया।
"ई हरमजादा........हमरे जना, हमहीं पाल–पोस के नान्ह से बड़ा किया, पढ़ाया–लिखाया ... अब जब चार पैसा कमाए लागा तो अंखिये फिर गई"
"अरे चच्चा, आखिर भवा का है ?" एक ने बात काटते हुए कहा।
"अरे होगा का!" पिता के स्वर में खिसियाहट उतर आई " पिछले महीना हम एकरे लग शहर गए रहे ... नजाने काहें चार दिना तक हम से मुंह फुलाए रहा, पाँचवें दिन कहे लागा, बप्पा तूं बेफजूल शहर मत आया करो, हम पूछै काहें ? तो कहे लगा खर्चा होत है, हम पूछै कैसन खर्च ?कहा जवन बैठे–बैठे पसेरी भर खाय जात हो, हम कहे हमार दू रोटी खाब तोके अखरत है, तो खोखियाय के चढ़ बैठा, तब का! यहाँ कौनो फसल काट के धरे हो ?अब बताओ, जब ई हमके दू रोटी अपनी कमाई से खियाय न सकत तो हम ऐसन बेटा लैके चाटब ? यही खातिर हम एकराके घर–मकान, खेत–खरिहान सब से बेदखल करदिया"

पिता की यह गाथा सुन लोग–बाग श्रावन कुमार को लानत–मलामत करने लगे। एक ने तो उस पर कटाक्ष करते हूए उस महान श्रावन कुमार की उपमा दी जो अपने नेत्रहीन मातपिता को काँवर में बैठा के कंधे पर उठाए चारों धाम के तीर्थ कराने निकला था। गरमी, जाड़ा, बारिश की परवा किए बिना यात्रा करता रहा। उबड़–खाबड़ अथवा पथरीली धरती पर चलता रहा, यहाँ तक

कि तलवों में छाले पड़ गए थे, और एक श्रावन कुमार यह हैं जो पिता को दो जून की रोटी तक नही दे सकते .... धिक्कार है ऐसे बेटे पर ...... ! उसकी बात अभी समाप्त भी नही हुई थी कि एक पाटदार आवाज़ गूंजी "बस !" सब के सब चौंक के उस आवाज़ की ओर पलटे, देखा व्यास जी वहाँ मौजूद एक एक आदमी को अपनी कुपित दृश्टि के घेरे में लिए हुए थे।

व्यास जी गाँव के पुरोहित थे, इस लिहाज से गाँव वालों पर उनका भरपूर दबदबा था, ऐसा दबदबा कि लोग–बाग उनसे आँख मिला के बात करने की साहस न करते थे, चाहे वह उम्र के किसी दौर में हों। बहरहाल ! व्यास जी पर निगाह पड़ते ही बाप–बेटे दोनों लपक के उनके चरणों पर झुक गए, फिर बाप उनके आगे हाथों को जोड़ सिर झुकाए अदब से खड़ा हो गया, जबकि बेटा चरणों पे माथा रगड़ते हुए सिसक रहा था। व्यास जी ने उसे उठाया, उसके आँसू पोंछे और उसके सिर पर हाथ फेरते हूए कहा "महतो ... लडका शहर में तुम्हारे संग जो भी आचार व्यवहार किया वह अपनी जगा .... हम मानते हैं कि इसके आचरण से तुम्हें ठेस पहुंची है, परन्तु यह इतना दोशी नही है जितना तुम समझ रहे हो" व्यास जी के इस प्रकटन पर सब् के सब हैरत से एकदूसरे का मुँह ताकने लगे, पिता के मुख पर तो हवाईयाँ उड़ने लगी थीं, वह आश्चर्यचकित मुद्रा में व्यास जी की ओर देखने लगा। व्यास जी उसकी यह दशा देख मुस्काये, फिर उसके कंधे पर हाथ धरते हुए अपनाईयत भरे स्वर में पूछा "महतो, शायद तुम मेरी बात समझ नही पाए ?"

"जी महाराज ... तनी समझा दें तो बड़ा उपकार होगा"

पिता ने नम्रता पुर्ण स्वर में कहा, साथ ही वहाँ इक्ट्ठा हुए लोगों ने भी कहा।

"हाँ महाराज ई गुत्थी सुलझा दें तो हम लोग भी धन्य हो जायेंगे"

व्यास जी ने लोगों पर एक उचटती सी निगाह डाली .... खंखार के गला साफ किया और एक एक शब्द चबा–चबा कर कहना शुरू किया "शायद तुम लोगों को पता नही होगा कि हर स्थान, हर प्रांत

की माटी का अपनी रीत अपना रिवाज, अपनी सभ्यता अपना संस्कार होता है ... आदमी जब उस माटी में रच–बस जाता है तो उसकी सोच क्रिया भी वैसी ही बन जाती है, अभी हमने सुना नन्कू चौधरी रामायण युग के श्रावन कुमार की उपमा दे रहे थे ..... इस में कोई सन्देह नही कि श्रावन कुमार अपने माता पिता के आदर–सम्मान तथा उनके अधिकार में कभी कोई कोताही किया हो .... परन्तु यात्रा के बीच वह भी एक स्थान पर अनादर पे उतारू हो गया था, उसने माता–पिता का काँवर झटक दिया था और आँखें तरेर के बोला था ''बहुत हो गया तीर्थ .... बड़ा बटोर लिया पुन आप लोगों ने, अब हम यहाँ से पग भर भी आगे नही ले जायेंगे'' यह सुन कर माता–पिता की अवस्था विस्मयजनक हो गई, पिता ने कारण जानना चाहा तो श्रावन कुमार बोला ''हम जो दोनों जने को ठांव–ठांव ढ़ोते फिरते हैं, हमारी इस श्रम का कुछ तो फल मिलना चाहिये, आप तो कुछ देने से रहे, फिर आप के पास है ही क्या ?''

पिता दूरदर्शी थे, श्रावन कुमार की बात सुनके मुस्काये ''ऐसा न कहो पुत्र .... अब भी देने के लिए बहुत कुछ है हमारे पास''

''फिर मुझे इस से वंचित क्यों रखा है आपने ?'' श्रावन कुमार क्रोधित स्वर में बोला था।

''देंगे पुत्र ..... आवश्य देंगे, किन्तु काशी पहुंचने से पहले नही''

''यदि काशी पहुंचने पर भी न दिया तब ?'' श्रावन कुमार ने शंका प्रकट किया। पिता तिलमिला उठे ''हम वचन देते हैं पुत्र'' पिता जब वचनबध होगये तब जाकर काँवर उठाया, अभी वह यात्रा आरम्भ करना चाहते थे कि पिता ने बिनती की ''पुत्र आगे बढ़ने से पहले यहाँ की थोडी सी माटी काँवर में धर लो''

''माटी ! माटी का क्या होगा पिताश्री ?'' श्रावन कुमार ने आश्चरित स्वर में पूछा।

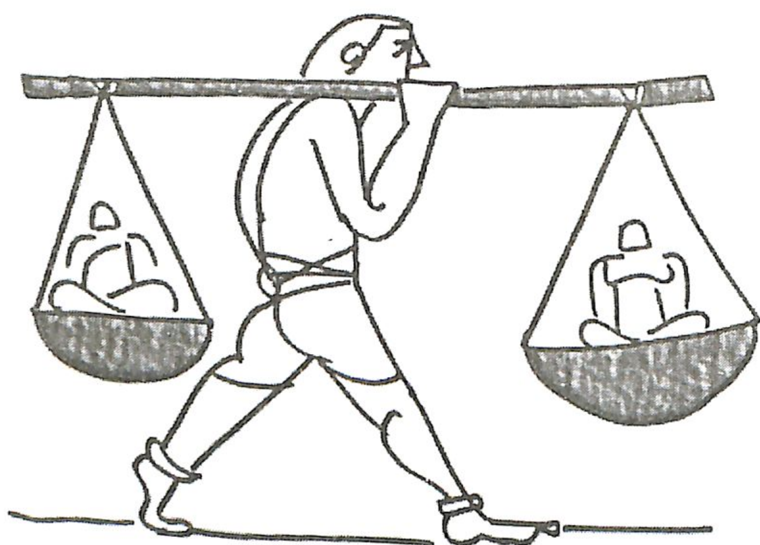
''यहाँ की माटी बडी अमुल्य है पुत्र'' श्रावन कुमार ने झट पिता के आज्ञा का पालन किया और काँवर उठाके चल पडे। महीनों की यात्रा के बाद जब काशी पहुंचे तो पिता ने श्रावन कुमार से कहा ''मांगो पुत्र क्या मांगते हो अथवा कैसा फल चाहते हो अपनी इस श्रम का ?'' पिता के मुख से ऐसी वाणी सुन श्रावन कुमार आश्चर्य में पड गया ''कैसा श्रम ? कैसा फल ? कुछ समझा नही पिताश्री ?''

"वर्शों तुमने हमें काँवर में ढ़ोया है न पुत्र ?"
"यह तो मेरा कर्तव्य था, जिसका मैं ने पालन किया"
"किन्तु पुत्र तुम ने ही हम से अपनी इस सेवा के फल क़ी मांग की थी और हमने तुम्हें काशी पहुंच कर देने का वचन दिया था"
"आप.... आप कैसी बातें कर रहे हैं पिताश्री ?"
श्रावन कुमार रोहांसा हो गया।
"याद करो पुत्र"
"मुझे कुछ याद नही" श्रावन कुमार रोने लगा।
"नीर बहाने से कुछ लाभ नही पुत्र" फिर मस्तिश्क पर जोर देते हूए बोले " एक स्थान पर हमने तुम्हें काँवर में माटी रखने के लिए कहा था .... याद है पुत्र ?"
"जी पिताश्री"
"लावो वह माटी यहां धरती पर फैला दो" पिता के आज्ञानुसार उन्हों ने माटी को भूमि पर फैला दिया, पिता ने फिर आज्ञा दी "अब तुम इस माटी पर खड़े हो जाओ"वह माटी पर खड़ा होगया, कुछ समय तक तो उसकी दशा विस्मयजनक रही परन्तु कुछ समय पश्चात धीरे–धीरे उसके मुखमंडल पर क्रोध का जाल तनने लगा, देखते ही देखते एकबार फिर वह पिता पर बरस पड़ा "लाईये..... दीजिए, अब तो आप काशी पहुंच आये हैं, फिर विलंभ क्यों कर रहे हैं ?क्या आप को अपना वचन ......" वह अभी बोल ही रहा था कि अचानक उसके मस्तिश्क में बिजली सी कौंधी और उसका विवेक जैसे जाग्रित होगया, वह झट माटी से परे छटक आया और पिता के चरणों में लोट कर लगा फूट–फूट के रोने, एकदम ऐसे ही जैसे अभी यह हमारा श्रावन कुमार रो रहा था। वह भी बस क्षमा .... क्षमा की रट लगा रहा था, जबकि पिता के अधरों पर मंद–मंद मुस्कान रेंग रही थी, कुछ छणों तक वह ऐसे ही मुस्कान बिखेरते रहे फिर श्रावन को अपने चरणों से उठाते हूए कहा "क्षमायाचना की कोई आवश्यकता नही पुत्र, क्योंकि दोशी तुम नही, दोश तो उस माटी का है जहाँ उस समय हमारा वास था।
"माटी का दोश ! कुछ समझा नही पिताश्री" उसके माथे पर चिंता के बल पड़ गये थे जबकि पिता के मुख का वातावर्ण अर्थ पुर्ण हो गया था, वह खंखार कर कंठ में फंसा बलगम थूकते हुए बोले।

''पुत्र जिस भांति पाँच कोस पर पानी और बारह कोस पर बानी बदल जाती है, इसी प्रकार सवासव कोस पर धरती के संस्कार भी बदल जाते हैं, वहां की माटी के रीति–रिवाज बदल जाते हैं, सभ्याता बदल जाती है'' इतना सुनना था कि श्रावन कुमार धन्य हो पिताश्री कहते हूए उनके चरणों में गिर पड़ा और उसके नैनों से प्रसन्नता का नीर उमड़ पड़ा।

व्यास जी की यह श्रावन कथा सुन सभी लोग ऐसी चुप साधे मानो सभी को साँप सूँघ गया हो .... कुछ पल बाद व्यास जी श्रावन कुमार का हाथ अपने हाथ में लेते हुए उसके पिता से बोले ''महतो ... अपना श्रावन कुमार भी उसी धरती के संस्कार का भोगी है, जिस धरती पर वह महान श्रावन कुमार बहक गया था।





एक कफन और !

शराबख़ाने के दरवाज़े पर घेसू और माधव दानों बाप–बेटे शराब के नशे में धुत पडे थे। इन्हें अपने आप की सुध न थी, पूस के जाडे का भी कुछ असर न था। भला फिर यह ख़्याल कैसे आता कि उनके घर की लक्ष्मी बुधिया प्रसव–पीडा से तडप–तडप के प्राण त्याग चुकी है और वह उसकी मौत पर रो–धो कर गाँव वालों से चन्दा इकट्ठा करके कफन खरीदने बाज़ार आए थे।

शराब चीज़ ही ऐसी है जो आदमी के विचार व विवेक, वेदना व व्याकुलता को समाप्त कर देती है। शायद इसी कारण दानों के चहरे चिंता से बिल्कुल ख़ाली थे, ऐसा जान पड़ता था मानो मरने वाली की जगा उन्होंने ख़ुद ही कफन ओढ़ लिया हो और अनंतकालीन निद्रा में सो रहे हों। किन्तु ऐसा न था, हाँ ! उन्होंने कफन का तरल ज़रूर अपने अस्तित्व में विलीन कर लिया था।

रात की कोख से सुबह का जन्म हुआ, साथ ही नशा भी टूटा। पड़े–पड़े ही उसने करवट बदला, यकायक शरीर को छेद

देने वाली हवा का एक झोंका उस पर कंपकपी तारी कर गया। वह कसमसा के उठ बैठा और खुद को ऐसे कुहासा भरे वातावरण में खड़ंजे की सड़क पर पड़ा पा के अचंभित दृश्टि से आस–पास का जायज़ा लेने लगा, देखा चार छः गज़ की दूरी पर उसका बाप भी घुटनों को पेट से लगाये बेसुध पड़ा है और एक कुत्ता टांग उठाये उसके मुंह पर मूत रहा है। यह देखते ही उसका रहा सहा नशा भी उतर गया और वह बैठे ही बैठे हांकने वाले अन्दाज़ में कुत्ते की ओर हाथ लहराते हुए डांटा ''दुर .... दुर रे'' कुत्ता भी उसी जैसा आलसी था, टस से मस न हुआ, फिर उसने पास पड़ा कुलल्हड़ का टूटन उठा कर दे मारा। कुत्ता कूं कूं करता सामने दीनू हलवाई की भट्टी में जा घुसा। घेसू का चेहरा कुत्ते के मूत्र से पूरी तरह भीग चुका था, फिर भी वह जस का तस पड़ा रहा, यह देख माधव चकित रह गया कि रात उसने कितनी पी ली थी जो उस पर इस कड़ाके का जाड़ा और ओस का भी कुछ असर नही। वैसे तो उसे पीने को जितनी मिल जाए कम है। उसे याद आया, एक दफा उसने चोरी से माँ की हंसली बेचकर दो लबनी ताड़ी अथवा एक गगरी महवे की कच्ची शराब रात भर में गटक गया था। उसने माँ के कई गहने ऐसे ही ताड़ी और शराब में घोल दिये थे। माँ थी कि बेचारी मुंह से कुछ न कहती, बस मन मसोस के रह जाती। यध्पि उसके ज़ेहन में माँ का चेहरा धुंधला–धुंधला सा ही उभरता था, क्योंकि जब वह मरी थी माधव सात–आठ वर्श का था, हमेशा माँ के पीछे–पीछे लगा रहता, वह भी उसे लिए लिए ही सारा काम–काज किया करती थी। बाप तो शुरू ही से निकम्मा और जाँगरचोर था, कभी दो–चार रूपयों की मज़दूरी कर भी लिया तो ताडी पी के खूब हड़बोंग मचाता। इस पर भी माँ उससे रत्ती भर न चिढ़ती, बल्कि वह तो उसे पति परमेश्वर मानती थी, उसके लिए करवाचौथ का बरत रखती, संतोशी माँ की उपासना करती, हां ! अगर कभी गुस्सा करती तो इसलिए कि वह दिन चढ़े पर भी क्यों सोया पड़ा रहता है .... माँ का यह विश्वास था कि सूरज देवता के आँख खोलने पर भी जो सोये पड़े रहते हैं उनके मुंह पर कुत्ता मूतता है।

''बुधियो तो ईहे कहत है'' अचानक उसे अपनी पत्नी बुधिया की

कही बात याद आगई, अकसर उस समय जब दोनों बाप–बेटे शराब के नशे में धुत होकर धमाचौकड़ी मचाते या उसे मारते–पीटते तब खिसिया के कहा करती थी "मूत पी–पी के छुट्टा सांड़ जैसे मोटाय गये हैं, मजूरी करे कहो तो रोग लग जात है, अरे ! जो इहे दसा रही तो जे दिन मरोगे केहू मुंह में दू ठोप गंगाजल तो क्या नबदान का पानी तक न डालेगा... कुक्कुर मूतेगा मुंह में!" वह असमंजस में पड़ गया कि बात तो सच है, उसने अपनी आँखों से कुत्ते को मूतते देखा है। पर बुधिया को यह ज्ञान कैसे प्राप्त हो गया! ऐसी ज्ञान ध्यान वाली बातें तो केवल देवी–देवता ही जानते हैं या फिर कोई अन्तरयामी! कहीं ऐसा तो नही बुधिया भी कोई अन्तरयामी हो ? वह सोचने लगा ... सच वह अन्तरयामी या किसी देवी का अवतार ज़रूर है, तभी तो रोज पौ फटने से पहले नहा–धो लेती है और सूरज देवता को जल चढ़ाके हनुमान चालीसा का जाप करती है, संझा की बेला सत्तीमाई के चौरा और डिह बाबा क़ी समाधी पर दीप जलाती है। इसी कारण बस्ती के सभी छोटे–बडे उसका आदर करते हैं। उसे बिटिया, भौजी, काकी जिसका जो पद लगता, उस पद से पुकारते हैं... हम बाप–बेटे का तो ठीक से नाम तक नही लेते। घेसुवा–मधवा कहकर बुलाते हैं। बुधिया को यही अखरता है। वह चाहती है उस की तरह हमारा भी आदर–सम्मान हो, हम भी चार लोगों में बैठें–उठें, बिरादरी के कार–परोजन में हाथ बटायें। परन्तु यह सब हो भी तो कैसे ?लोग–बाग हमें जांगरचोर और नसेड़ी जानते हैं, यह बिरादरी के निकट हतक वाली बात है। इसी कारण बिरादरी ऐसे लोगों का हुक्का–पानी बंद करदेती है, जबकि मेहनती तथा काम–काजी आदमी की खूब आवभगत करते हैं, उनकी मान–प्रतिश्ठा का ध्यान रखते हैं। उसकी सोचें यकायक स्वर में बदल गई "साच ! ईज्जत, मान–मर्यादय तो जिनगी क मूल है जो हम लोगन के मवसर नही.... आखिर एकरे बिना जिनगी का कवन मतलब ?आदमी यही खातिर तो जियत मरत है"

फिर उसने मन ही मन में ठान लिया कि वह अब कभी शराब

नही पीयेगा, पीना तो दूर छूयेगा तक नही, बस डट के मेहनत करेगा, गाँव में जो किसीने काम न दिया तो शहर चला जायेगा, वहां रेक्सा खींच कर या पल्लेदारी करके पैसा बटोरेगा, जब चार पैसे पास होंगे तो इज्जत खुदही बन जायेगी, जो आज धुतकारते हैं वही जी हजोरी पर उतर आयेंगे .... तब वह बुधिया से कहदेगा कि वह अब मजूरी पे न जाया करे बल्कि घर में रानी बन के रहे रानी ! ..... सहर से जब कमाके लौटेगा तो उसके सिंघार–पटार के लिए अलता, महावर, सिंदूर, बिंदिया, काजल और रंग–रंग की चूड़ियां जरूर ले आयेगा, खुद सहरी बाबूओं जैसा चरखाने की पतलून कमीज और बूट पहन के आयेगा, बुधिया तो उसे देखते ही मारे खूसी के बावरी होजायेगी .... उसे लाटगमन्डर या बलमपरदेसिया कह कह के बुलायेगी, जब सारा सामान उसके हवाले करदेगा तो वह नेहाल होजायेगी और एक एक चीज उठाके आँखों से लगायेगी, उसे चूमेगी, होसकता है अपने खातिर छींट की साड़ी भी खोजने लगे। वह ध्यान ही ध्यान में बड़बड़ाने लगा "हाँ! खोजी तो जरूरे.... साल भर से बेसी भयगवा ओके गौने आए, बकिन आज दिन तक नया बस्तर नसीब न भवा, इनका उनका उतरन पहिन के देंह ढ़ांकत है, बकिन अब ओके उतरन पहिने के नौबत कभी न आई"
"हाँ! अब ओके केहू का उतरन पहिने का नौबत न आई .... ओके अब कपड़ा–लत्ता का कौनो जरूरत नाही" उसके भीतर से आवाज़ उभरी थी "अब ओके कफन चाही माधव कफन! आउर ओकरे कफन का पैसा तो तूं दोनों बाप–बेटा शराब में घोर दिये" अचानक उसकी निगाहों के आगे बुधिया का ठन्डा शरीर, पथराई हुई आँखें तथा मुंह पर भिनकती मक्खियां घूमने लगीं। वह कुछ पल ऐसे ही फटी–फटी आँखों से शून्य में घूरता रहा फिर उसके कंठ से एक अनूठी चीख जैसी कराह निकली। "बुधिया मर गई ..... मर गई बुधिया" आवाज़ रूंध गई थी, नैनों में आंसू झिलमिलाने लगे थे। फिर उसने भीगी आँखों से घेसू की ओर देखते हुए पुकारा "अे दद्दा, बुधिया मर गई....बुधिया मर गई रे दद्दा" और भोंकर भोंकर के रोने लगा। घेसू पर उसके रोने का कोई असर न हुआ, वह ऐसे ही गठरी बना पड़ा रहा। जबकि माधव के रोने पीटने पर पास–पड़ोस के आठ–दस लोग बाहर निकल आए थे।

"कांहे रोवत है बे ?"
एक ने प्रश्न किया। माधव उसकी ओर देख घिघियाया।
"भइया, बुधिया मर गई....मर गई बुधिया....हे दद्दा उठ बुधिया मर गई"
बाप को दोबारा पुकारने लगा और वह था कि कुम्भकरण की नींद सोया था,उठने का हाल ही न जानता था। आखिर माधव खुद उठ के उसे उठाना चाहा तो उसे आभास हुआ कि उसका शरीर अकड़ चुका है और आत्मा परमात्मा से जा मिली है, देखते ही देखते वह धम से गिर पड़ा "हाय दद्दा तूभी हमके छोड़के चल दिए" और उससे लिपट के रोने लगा, इस बीच वहां कुछ लोग और जुट गये थे और इनके बारे में अटकलें लगाने लगे थे। एक ने कहा।
"चिल्लू पूर के कुर्मी जान पड़त हैं ...."
दूसरे ने काट की "न रोवाँपार के हरिजन हैं"
"तुम्हार कहना ठीक है बकिन ई लोग यतना जाड़ा–पाला में इहां कैसे ?"
"अरे भइया ई भी कौनो पूछै वाली बात है .... बुढ़वा बेराम रहा होगा, अस्पताल पहुंचे से पहिले रस्ता में दम निसर गया होगा बस!"
"नाही भइया ..... बेराम–सेराम न रहा होगा, बलकिन ठंड से ठिठुर के मरा है, देखत न हो कैसन शरीर ऐंठ गई है"
"बेचारा !"

अब कुछ लोग ऐसी मौत पर तरस खा रहे थे तो कुछ इसे कर्मों का भोग बताके अपने कर्मों का हिसाब करने लगे थे। एक ने तो माधव से कुछ पूछना–पछारना चाहा भी किन्तु वह था कि बस रह–रह के एक ही अलाप लेता था "हाय दद्दा तूं ऐसन बखत मरे की हमरे लग फूटी कौड़ियो नही के तोंके कफन दूं" एक भले आदमी ने कहा "लाचार है बेचारा ..... क्रियाक्रम के खातिर रूपिया नही है एकरे लग, जो रहा भी होई दवाई–दारू पे उठ गवा होई"
"ठीक कहत हो भइया .... गरीबी, लचारी के आगे किस का कौन बस! भगवान न करे ऐसा दिन कोई दुस्मन के भी देखे के पड़े"
"हाँ भइया ! आफत मुसीबत आखिर अदमिये पर तो टूटत है और ऐसे बखत अदमिये अदमी के काम आवत है, आज हम लोग एकरे

काम आयेंगे.... कल होसकत है हम लोगन पर भी बखत पड़ जाए तब.....! वैसे ठोप ठोप पोखरा होइ जात है पंचों'' और उसने एक सिक्का माधव के हाथ पर धर दिया। फिर तो उसका देखा देखी सभी के हाथ बारी–बारी अपनी–अपनी जेबों और अन्टीयों पर गये... .जिससे जो बन पड़ा उसके हाथ पर रखने लगा। पल के पल में काफी रूपया जमा होगया।

उसने एक साथ इतना रूपया कभी नही देखा था अतः दुख तथा चिंता से बुझी आँखें हर्श से दमकने लगीं और फुतूरी ज़हन जाग उठा, वह सोचने लगा कि इतने रूपियों से तो वह तीन दिनों तक लगातार शराब पीता रहे तब भी कफन भर को पैसे बच रहेंगें.... फिर लाश को कफन देना जरूरी है क्या ?आखिर जल ही तो जाता है। फिर बाप की लाश पर घृणात्मक दृश्टि डालते हुए मुंह बिगाड़ा ''कैसा बेफालतू रिवाज़ है कि जेके तन ढ़ांके को चिथड़ा न मिले ओके मरे पर नया कफन चाही ...... हूं !''
और लम्बे–लम्बे डग भरता एक ओर चल दिया।





हलजोता

''जोखुआ..........अे जोखुआ'' ठाकुर रामपाल खेत की मेड़ पर खड़ा चमरोटी की ओर मुंह किए जोखू हलजोते को हांक लगा रहा था। आवाज़ सुनते ही जोखू झट झोपडी से बाहर निकल आया, अधेड़ उम्र, मरीयल सा, आँखें भीतर को धंसी हुई थी, काले भुजंग शरीर की नग्नता को गमछा से ढ़ांके हुए था। वह माथे पर हथेली का छज्जा बनाकर चुनधियाई आँखों से आवाज़ की ओर देखा। ''अरे दद्दा हो दद्दा ..... बाबू साहेब'' उसके अधर फड़फड़ाये तथा शरीर थरथर कांपने लगा।

''हरे जोखुआ'' आवाज़ दोबारा उसके कानों से टकराई, वह कांपते स्वर में चिल्लाया ''आवत हूं बाबू साहेब'' और सरपट दौड़ पड़ा। खुत्ती, कंटीली झाड़ियों और खेत की मेंड़ों को लांघते–फलांघते ठाकुर रामपाल के समक्ष पहुंच कर हेंग चले बैल की भांति हांफने लगा। ठाकुर आपे में न था, खींच के एक ज़ोरदार थप्पड़ उसके सुखे पिचके गाल पर जड़ दिया ''का रे हरमजादा, ई बेला भय गई, घाम कपार (सिर) पे चढ़ आवा बकिन अबतक खेत मा हल नही पड़ा, जांगरचोर कहीं का ! खाये के तो अढ़ाई सेर चाही आउर काम...?''

ठाकुर के इस बरताव से उसकी आँखें भर आयीं और गला रुंध गया ''बाबू साहेब बलिया की महतारी बहुत बेराम हो''

"बेराम है तो का भवा ..... मरी तो नही नां ? चल जल्दी से बरधा नाध, आज अठवारन भय गवा सिंचाई भये"
"आज़ भर आवुर जाये देव बाबू साहेब"
"धत सारे ..... खेतवा टनक जाई तब जोतबे ?"
"नाही बाबू साहेब, बस आज....."
"चुप....अब हम कुछ नही सुने चाहित.....बस हम यतना जानित है कि, चाहे जो हो आज हमार खेत जोता जाये चाही, चाहे बलिया की महतारी जिये या मरे"

ठाकुर तो अपना फरमान जारी करके चला गया किन्तु जोखू की आँखों की नहर सूखे पचके गालों के खेत सींचने लगी तथा सीने पर बेबसी के न जाने कितने हल एक साथ चलने लगे। वह सोचने लगा हलजोताई का जीवन भी कोई जीवन है! बैलों के संग काम करते–करते शायद हम भी बैल हो गये हैं, तभी तो जेठ–बैसाख की चिलचिलाती धूप, पूस–माघ का जाड़ा और सावन–भादों की बरसात की परवा किये बिना हम अपने शरीर को कश्ट देते हैं, बदले में पाते क्या हैं ?गाली, लात और घूंसा.....हाय रे क़िस्मत !

कहते हैं बारह बरस बीते घूरे के भी दिन फिरते हैं......आख़िर देखते ही देखते हलजोतों के भी दिन फिरे, समय ने करवट बदला तथा एक–एक कर हलजोते रोटी उगाने शहरों की ओर कूच करने लगे, फिर क्या था धीरे–धीरे खुशहाली उनका मुकद्दर बनती गयी और वह मुकद्दर का सिकन्दर बनते गये। फिर उन्ही का देखा–देखी नाई, धोबी, कहार, बढ़ई, लोहार और अन्य छोटी जातियों के लोग भी शहर सिधारने लगे। हलजोतों में से जो गाँव में रह गये थे वह भी हलजोताई छोड़ कर मजदूर बन गये अर्थात जजमानी समाप्त करके दिहाड़ी पर हल जोतने लगे। इस कारण धीरे–धीरे बैलों के गले की घंटियां बजना कम होगयीं तथा रहट के संगीत भी शांत होते गये। फिर इन की जगा पम्पींगसेट, थरेशर, क्रेशर और ट्रेक्टर ने लेलीया। इस प्रकार हलजोतों की कमी की भरपाई हुई और काम समय से पहले होने लगा। इसी के साथ–साथ खादी ग्राम उद्दयोग ने भी पाँव पसारे, जगा–जगा हथकरघे गड़ गये, दरियां और चादरें बीनी जाने लगीं, ग्रामपंचायत का बोल बाला हुआ, गाँव की तरक्क़ी के लिए ग्रामप्रधनों को सरकारी धन राशी मुहैया किया जाने लगा। नहरु रोज़गार गारन्टी योजना अथवा महात्मा गांधी

रोज़गार गारन्टी योजना के तहत साल में सौ दिनों की दिहाड़ी पक्की कर दी गई, साथ ही साथ बेंकों से पशु–पालन और मछली–पालन हेतु कर्ज़ मँजूर होने लगे। बलॉक से किसानों को बीज और खाद रियायती दामों पर उपलब्ध कराया जाने लगा। कहने का तातपर्य यह कि गाँव में पिछड़ी जातियां तथा मेहनतकश वर्ग खुशहाल होने लगा जबकि उच्च वगर्य लोग अपनी काहिली तथा कायरता के चलते नाआसुदगी का शिकार होने लगे।

ठाकुर रामपाल की भी दशा कुछ यही हुई। कहते हैं कि हाथी मरा भी तो सवा लाख का! बाप दादा की ज़मीनें थीं, कुछ पुरानी अशरफियां और रुपये भी थे इसलिए साल दो साल बिना किसी आवक के खाते–पीते रहे। जबकि हलजोताई टूटने के बाद सारे के सारे खेत परती ही रहे, कभी जोता तक न गया। हालाँकि कुछ लोगों ने ठाकुर साहब से कहा भी कि यदि खेत ऐसे ही परती रहे तो उसर हो जायेंगे, झाड़ें–झंकाड़ें तो उग आई हैं......कुछ नही तो दो तीन बाँह जोतवा कर चरी ही बोवा देना चाहिए ताकि खेतों का जोबन बना रहे। किन्तु ठाकुर साहब ने सब सुनी–अनसुनी कर दी, क्योंकि वह वज़ादारी की बुलन्दी से खाई देखने वालों में से नही थे, वह हलजोतों को दृश्टि के जिस कोण से देख रहे थे हालात के गोलाकार में भी वही कोण चाहते थे। परिणाम स्वरुप कई बिगह ज़मीनें मदिरा में डूब गयीं। जगपाल ने पिता की यह गत देखी तो उसे पुरखों की मान–मयार्दा लड़खड़ाती और भविश्य अंधकार में डुबता मालूम हुआ अतः उसे बनजर होते खेत और कुछ आमदनी की चिंता सताने लगी, पहले तो उसने सोचा क्यों न खेत बटाई पर दे दिया जाय, न जोतने बोने का झनझट न फसल काटने का पचड़ा! घर बैठे आधा अनाज मिल जाया करेगा। फिर अचानक उसकी सोच बदल गई, "नही–नही यह ठीक नही रहेगा....एसे तो वह लोग भी जो हमसे डरते और दबते हैं बराबरी करने लगेंगे....न.... .कुछ और सोचना चाहिए..."

बहरहाल काफी सोच–विचार के बाद ट्रेक्टर खरीदने की बात उसके दिमाग़ में समाई। फिर एक दिन डरते–डरते यह बात ठाकुर साहब के भी कानों में डाल दिया। ठाकुर साहब सुनते ही आगबबुला हो गए, मारा भर नही बाकी सब पद कर दिया उसका। हालात की नज़ाक़त को समझते हुए उस समय तो जगपाल चुप रहा किन्तु इसके बाद मौक़ा बे मौक़ा ट्रेक्टर के लाभ से पिता को

अवगत कराना न भुलता। कहते हैं पत्थर पर एक ही जगह बार–बार रस्सी की रगड़ से पत्थर भी घिस जाता है, ठाकुर साहब तो इन्सान थे, आख़िरकार एक दिन उन्हों ने उसे ट्रेक्टर ख़रीदने की अनुमति देदी।

समस्या अब यह थी कि ट्रेक्टर आये तो आये कैसे ? रुपये तो पास थे नही। अतः ठाकुर साहब से विचार विमर्श हुआ फिर कुछ ज़मीनें बेची गयीं और ट्रेक्टर आगया।

फिर क्या था सूखी,बनजर होती ज़मीनों को नहर के पानी से सींचा गया और ट्रेकटर से कई फेरा जोत कर मिट्टी को भुरभुरी करके ख़रीफ की फ़सल बो दी गई। मिट्टी की सोंधी–सोंधी महक जब उसके नथनों में घुसी और हाथ पैरों ने मिट्टी की स्नेहयुक्त छुवन महसुस किया तो जगपाल को खेती से लगाव हो गया और वह फ़सल का खूब–खुब ख़्याल करने लगा, आवश्यकतानुसार खाद, पानी तथा कीटनाशक दवायें मुहैया करता रहता। फलस्वरुप मेहनत रंग लाई, फ़सल दूसरों की बनिसबत अच्छी हुई, इतनी अच्छी कि सारा गाँव उस पर रश्क करने लगा। फिर क्या था देखते ही देखते वह लोगों की निगाहों में मेहनत और लगन की उपमा बनकर कुन्दन की भांति दमकने लगा...जहां–तहां बस उसीका चर्चा था। वह भी अपनी इस कामयाबी पर फूले न समाता था। किन्तु उसकी यह कामयाबी ओस की बूंद साबित हुई, क्योंकि बोआई तो जैसे तैसे हो गई थी परन्तु अब कटाई कैसे हो?मज़दूर तो सभी अपने–अपने खेतों की कटाई में जुटे थे, दुगनी मज़दूरी पर भी राज़ी न होते थे। वह जिस किसी से कहता वह क्षमा याचना करते हुए कहता "छोटके ठाकुर बदरी हर घड़ी छाई रहत है, कहूं पानी बरस जाई तो हमहन क कुल मिनहत पानी होई जाई, दौनी ओसौनी होई जाये दो.....दाना भुसा खरियान से उठ जाए तब आपो क कटईया कर दिहल जाई" न जाने कैसे यह बात ठाकुर साहब के कानों तक पहुंच गई, वह सुनते ही आगबबुला होगए "चमरौटन की ई मजाल" फिर आव देखा न ताव झट खेत जा पहुंचे और किसी अल्लहड़ कुमारी की भांति झुमती–इठलाती फसलों को क्रोध की अग्नि दिखा दी और खड़ी फसल देखते ही देखते जल के स्वहा हो गई। जगपाल पिता का तेवर जानता था इस लिए चुप्पी साधे रहने ही में भलाई जाना।

गाँव वाले जगपाल की फसल देखकर ट्रेक्टर की फायदामन्दी समझ चुके थे, अब वह भी अपने खेतों को हल की

बजाय ट्रेक्टर से जोतने की तरकीब लड़ाने लगे थे। जब यह ख़बर जगपाल तक पहुंची तो उसे अपने बेकार होते ट्रेक्टर का उपयोग अथवा आमदनी का रास्ता दिखाई देने लगा अतः मौक़ा को ग़नीमत जान कर झट किराये पर ट्रेक्टर से खेतों को जोतने का प्रस्ताव रख दिया। गाँव में खुशी की लहर दौड़ गई, फिर क्या था एक–एक करके खेत ट्रेक्टर से जोता जाने लगा और घन्टों का काम मिंटों में होने लगा। इस से लोगों को इतनी आसानियां मिली कि धीरे–धीरे सभी ने हल से खेत जोतना छोड़ दिया और ट्रेक्टर से जोतने के लिए जगपाल से सम्पर्क साधने लगे। इधर मज़दूर हलजोतों ने भी ट्रेक्टर की आवश्यक्ता को महसूस किया और वह भी मशीनी युग की क़तार में आ खड़े हुए। बहरहाल जगपाल का काम इस हद तक बढ़ गया कि उसे भोजन तक के लिए फ़ुरसत न मिलती, जबकि उसने ट्रेकटर का किराया दुगना और राशी पेशगी लेने लगा था, बावजूद इसके काम समय पर नही हो पाता था। लोग खेतों को सींच कर जोताई के लिए अपनी बारी की प्रतिक्षा करते।

जोखू हलजोते के बेटे बलिया ने भी अपना खेत जोतने हेतु पेशगी राशी जमा कराचुका था किन्तु उसकी बारी आती ही न थी, जो भी दिन उसके लिए तै होता उस दिन ट्रेकटर किसी और के खेत में चलता, इस प्रकार तीन मरतबा खेत सींचने के बाद सूख चुके थे, चौथी दफा भी जब ऐसा ही हुआ तो उसे क्रोध आगया और वह जगपाल को खोजता हवेली पहुंच गया। इन दिनों ठाकुर साहब बिमार थे, जगपाल उनकी देख–रेख और सेवा में लीन था। बलिया उसे पुकारता बेधड़क हवेली में घुस गया। उसे देखते ही जगपाल चौंक पड़ा फिर झट पिता की ओर देखा, उनके मुख पर घृणा व क्रोध की रेखायें फैलने तथा सुकड़ने लगी थीं। वह झट बलिया का गट्टा पकड़ उसे बाहर लेजाने के लिए खींचने लगा, किन्तु बलिया टस से मस न हुआ, अंगद के पाँव के भांति उसके भी पाँव धरती पर जमे रहे। जगपाल में इतना बल कहाँ था जो वह बलिया की काठी हिला देता, आख़िर थक कर उसकी ख़ुशामद करने लगा.......पिता की बिमारी की दुहाई देते हुए उसे बहलाने–फुसलाने लगा परन्तु बलिया ने उसकी एक न सुनी, बस बार–बार वह एक ही वाक्य कहता "चाहे जो हो छोटके ठाकुर, आज हमार खेत जोताय चाही" ठाकुर साहब हैरान थे कि माजरा क्या है ?उनकी आँखों में विस्मय की छाया लहराने लगी थी और माथे की रेखायें प्रश्नचिन्ह का रुप धारण कर रही थीं। जगपाल पिता की भीतरी अवस्था ताड़ गया था,

किन्तु करता भी तो क्या ? इस समय उसकी हालत साँप के मुंह में छछुन्दर जैसी थी, न उगलते बनती थी न निगलते। वह जब चिरौरी–मिन्ती के बावजूद भी वहाँ से न टला तो जगपाल के भीतर का छत्रिय खून खोल उठा और वह ठकुरई धौंस जमाते हुए शेर की भांति दहाड़ा।''अब तोरी भलमन्सी यहीं में है कि झट–पट निकल जा यहां से''

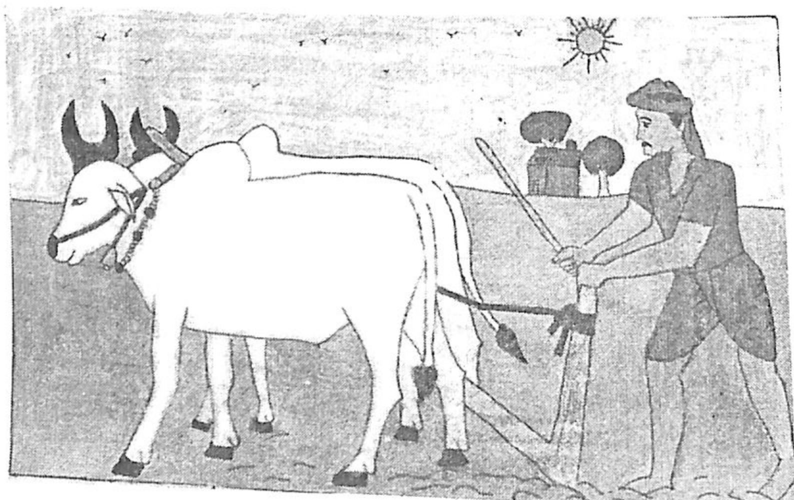
''नाही तो का करोगे ?'' बलिया की भी तेवरी चढ़ गई।

''पटक के लगब तोड़ै, हरमजादा कहीं का, बीस दफे कह चुके कि बाबा का जी अच्छा नाही त समझ में नही आवत........चल जो कल परसों तक तोर खेत् जोता जाई''

इतना सुनते ही बलिया ने लपक कर उसका टेटुवा पकड़ लिया और आँखों में आँखें गाड़ के बोला ''ख़बरदार जो अब गरियाए....... माई कसम तालू से जीभ खींच लेब........अरे खेत सींचे में रुपया लागत है रुपया !........हमरे रुपया हराम का नही आवत, कान खोल के सुन लेयो, आज चाहे जो हो हमार खेत जोताये चाही.........चाहे ठाकुर जियें या मरें''

यह सुनते ही जगपाल के पैरों तले से ज़मीन सरकती मालूम होने लगी, उधर ठाकुर साहब क्रोधित हो बिस्तर से उठने का प्रयास कर रहे थे कि धम से गिर पड़े और उनकी आँखों के आगे जोखू हलजोते का चहरा नाचने लगा।





स्थिति समान्य है

रेडियो ने ऐलान किया, टी–वी ने बाँग दी, अख़बारों ने यह वाक्य लिखे।
"पिछली रात शहर में हुए सांप्रादाइक दंगों में कुछ स्थानों पर छिट–पुट घटनायें घटीं, बलवाईयों ने पथराव किया, सोडा–वाटर की बोतलें फेंकीं, पेट्रोल–बमों का इस्तेमाल किया......पुलिस आयुक्त ने अठारह थाना क्षेत्रों में संचार–बंदी का निर्देश दिया है"

संचार–बंदी अर्थात कर्फ़्यू!.......शहर में कर्फ़्यू लगा दिया गया। ज़िन्दगियाँ घर की चार दिवारियों में क़ैद होगयीं....बाज़ारों, सड़कों, कालेजों, सरकारी व ग़ेर–सरकारी दफ्तरों की चहल–पहल तथा हल्ले–गुल्ले को सन्नाटे के विशाल अजगर ने निगल लिया है। मेरी बिल्डिंग के पिछवाड़े वाली सड़क जहां दिन–रात बसों, टेक्सियों तथा दूसरी मोटर–गाड़ियों के हार्न की पुकार और ब्रेक की चरमराहट गूंजा करती थी, वहां अब केवल परेड करते बूटों की धमक है। अलबत्ता पिछली रात इसी सड़क से लगी झोपड़पट्टी से फायरिंग की दिल दहला देने वाली आवाज़ें और आकाश की ओर उठते गाढ़े धूँए के कफ़न में लिपटे अधमरे समाज को इन्सानियत की मौत पर मातम करते ज़रूर सुना था, ऐसा हर्दय विदारक मातम जिसे सहन न कर अमन का चाँद यकजेहती के बादलों में छिप कर सिसक पड़ा, भाई–चारे के तारे अपना प्रकाश

खो बैठे, सभ्यता का सूरज मुख पर रात की कालिख मल के जाने कहाँ जा डूबा। राश्ट्रीयता के गगन पर केवल तअ़सुब के सितारे खुशियों की चमक बिखरे हुए थे। जिन की छत्रछाया में बंदूकें गोलियाँ उगल रही थीं, शोले लहक रहे थे, तलवारें खनक रही थीं, खून ख़राबा, लूट—खसूट का बाज़ार गर्म था। सुबह होते—होते हस्पतालों में घायलों का तांता लग गया, मुर्दा—घरों में शवों के ढ़ेर लग गए.......कब्रस्तानों में कब्रें खोदते—खोदते कब्रखोदों के हाथों में गड्डे पड़ गए। चिताओं के लिए लकड़ियां कम पड़ने लगीं। मरने वालों के परिजन रो—रो के बे—हाल हो रहे थे, कुछ तो देखने में चुप मालूम होते थे किन्तु भीतर ही भीतर रो रहे थे। यदि नही रो रहे थे तो केवल वह जिन्होंने सत्ता हथियाने की खातिर अपने भड़काऊ भाशणों से लोगों के ज़ेहनों को उत्तेजित कर 'हिन्दुत्व' के मंच पर हिंसा का यह तांडव प्रस्तुत किया था। अंजाम कार जो कल तक खूशहाल थे, आज वह बदहाल व बरबाद रीलिफ कैम्पों तथा रेल्वे स्टेशनों पर शरण लिए हुए थे और बड़ी संख्या में अपने—अपने गाँव की ओर कूच कर रहे थे। इसके विपरीत सत्ताई भेड़िये अपने—अपने घातगृहों में दुबके शराब व शबाब में मस्त थे, जबकि सत्ताधारी कौवे सियास्त की मुंडेर पर बैठे शहरों की दुल्हन कही जाने वाली मुम्बई का सोहाग उजड़ते देख रहे थे।

कर्फियू का आज पांचवां दिन है। पिछले पांच दिनों से शहर लगातार सुलग रहा है, जबकि शहर के सभी दंगा—प्रभावित क्षेत्रों में फौज का परेड जारी है। सी—आर—पी के कई बटालियन तैनात किए गए हैं....सिटी पुलिस भी बराबर गश्त कर रही है, और तो और कर्फियू की ख़िलाफ़—वरज़ी करने वालों को देखते ही गोली दाग़ देने का आदेश भी है। फिर भला वह कौन लोग हैं, जो इन सारी व्यवस्थाओं के बावजूद बे—ख़ौफ आग लगाते घूम रहे हैं ?स्त्रीयों की पवित्रता भंग कर रहे हैं ?बे—गुनाहों की हत्या कर रहे हैं ?? मैं प्रश्नों की ज़नजीरों में जकड़ता जाता हूं कि आख़िर पुलिस वाले और सुरक्षा दल उन्हें इस अत्याचार से रोकने में असफल क्यों हैं ?उनपर गोलियां क्यों नही बरस रही हैं ?क्यों ??आख़िर क्यों ???

अचानक किवाड़ पर दस्तक होती है। मैं चौंक पड़ता हूं। शायद इसी कारण प्रश्नों की ज़नजीर कड़ी—कड़ी बिखर कर भय के रूप में मेरे भीतर फैल जाती है और धीरे—धीरे मेरी नसों—नाड़ियों में प्रवेश करने लगती है।

"सिंह साहब, किवाड़ खोलिये"
दोबारह दस्तक के साथ दबी–दबी सी आवाज़ आती है, आवाज़ जानी–पहचानी लगती है फिर भी चिन्ता होती है कि इस प्रस्थिति में भी......?पत्नी भय की मूरत बन जाती है।
"आख़िर कौन हो सकता है ?"
"पता नही !" मैं मुंह बिचका के अज्ञानता व्यक्त करता हूँ। पत्नी का भय कुछ और बढ़ जाता है, वह झट हाथों को जोड़ उपर की ओर देखते हुए प्रार्थना करती है।
"हे भगवान.......हे संतोशी माता, कोई आफ़त हो तो टाल दो"
"आफ़त !" मैं थरथर कांपने लगता हूँ.....पत्नी हनुमान चालिसा का जाप करने लगती है। इस बीच बाहर से आने वाली दबी–दबी आवाज़ स्पश्ट हो जाती है।
"सिंह साहब किवाड़ खोलिए......घबराईये नही.....मैं हूं.......मैं, रामचन्दर "
"आं ! रामचन्दर बाबू !!" मैं एकदम नॉरमल होजाता हूँ। भय दूर करने के लिए पत्नी से कहता हूं। "अपने पड़ोसी हैं......रामचन्दर बाबू.......शायद कुछ चाहिए होगा उन्हें" और झट किवाड़ खोल उन्हें भीतर खींच कर किवाड़ बंद कर देता हूँ। यह कार्य इस तेज़ी से होता है कि मेरी सांसें उखड़ जाती हैं। बावजूद इसके मैं एक ही साँस में पुछता हूं।
"कहिये, क्या बात है......,मैं क्या सेवा कर सकता हूं आप की ?"
ज्वाब में उनके माथे पर हैरानी की रेखायें उभर जाती हैं। आँखों में असमंजस की परछाईयां लहराने लगती हैं। फिर उनकी असमंजस युक्त निगाहें मेरे भीतर की तलाशी लेने लगती हैं। मुझे अपने भीतर छुपे किसी चोर का आभास होने लगता है। अतः उनकी निगाहें परिवर्तित कराने की नियत से सोफे की ओर इशारा करके कहता हूं।
"बैठीये.......बैठीये ना....आ....आप....आप खड़े क्यों हैं ?"
"हुं!" वह अर्थपूर्ण दृश्टि से मेरी ओर ताकते हैं और सोफे पर बैठते हुए कहते हैं। "सिंह साहब......मालूम होता है आप इस कांड से कुछ ज़्यादा ही भयभीत हैं।"
"नन...नन....नही....नही तो....ऐसा कुछ नही है.....मैं.....मैं तो केवल आपके आने का मकसद पूछ रहा था" "मकसद ! ओह, सॉरी.....मैं

तो यह भूल ही गया था, वैसे भी इस में मेरा नही आप ही का दोश है, जो आपने किवाड़ खोलने में देरी की.......ख़ैर छोड़िये.....ख़बरों में सुना है, आज हालात कुछ नॉरमल हैं इसलिए कर्फ़्यू में घंटा भर की ढ़ील दी गई है...... सोचा यदि आपने ख़बरें न सुनीं हों तो......!''

''क्या!.....हालात नॉरमल!......कर्फ़्यू में ढ़ील! क्या कह रहे हैं आप ? ख़बरें तो हमने भी सुनी हैं। क्यों आशा ?''

पत्नी से पूछता हूँ। पत्नी 'हां' में सिर को हिलाते हुए कहती है।

''जी.....हमने तो ऐसा कुछ नही सुना।''

''परन्तु रामचन्दर बाबू......इसके विपरीत यह ज़रूर सुना है कि दंगाईयों ने माहिम वांजावाड़ी में तीन लकड़ियों की बखारें फूँक दीं। धारावी में एक बेकरी को लूट के तहस–नहस कर दिया....हाँ! ख़बरों के अंत में यह ज़रूर सुना कि शहर की स्थिति समान्य है। यह वाक्य लग–भग पाँच दिनों से मेरे कानों से टकरा रहे हैं। यदि वाक़िई शहर की स्थिति समान्य हैं तो कर्फ़्यू क्यों लागू किया गया है ?बावजूद इसके लूट–मार, आतिश ज़नी, आबरू रेज़ी का खेल कौन खेल रहा है?कहिए रामचन्दर बाबू, बोलिए ना....आप चुप क्यों हैं ?''

''सिंह साहब यह समय भावनाओं में बहने या बहस–मुबाहेसा का नही है। फिलहाल कर्फ़्यू में ढ़ील का यह एक घंटा बड़ा महत्वपुर्ण है। इस का पल–पल मुल्यवान है क्योंकि आज के बाद यह पल कब नसीब होंगे, कुछ कहा नही जासकता, इसलिए तुरन्त बाहर निकलो और बिसात भर खाने–पीने की चीज़ें ख़रीद लो''

रामचन्दर बाबू का यह सुझाव सुनकर मारे ख़ुशी के उछल पड़ता हूं।

''वाह रामचन्दर बाबू वाह! खूब सुझाया आपने.......यक़िन जानिये, दो रोज़ से तो चाय तक के लाले हैं।''

''सिंह साहब, इसलिए तो आपके पास अया हूँ.....चलिए जल्दी कीजिए, वरना ढ़ील का समय........!

''हाँ हाँ ज़रूर!''

और झट अलमारी से सौ–सौ की कई नोट और एक बड़ा सा थैला लेकर रामचन्दर बाबू की अगवाई में बिल्डिंग की सीढ़ियां उतरने लगता हूं।

हम चांरदिवारी की घुटन से खुले वातावरण में आ जाते हैं...... .वैसे तो वातावरण में अब भी भीशण सन्नाटे का विश भरा होता है। बस दो–चार लोग इधर–उधर दिखाई पड़ते हैं, वह भी सहमे–सहमे से, सो मैं भी सहम जाता हूं....शायद इसी कारण शरीर में थर थराहट और पैरों में कपकपी होने लगती है। रामचन्दर बाबू मेरी दशा भाँप जाते हैं और मुझे सिर से पैर तक आश्चर्य से देखते हुए पूछते हैं।

''क्या बात है सिंह साहब ! काँप क्यों रहे हैं ?''

मैं झेंप सा जाता हूँ। ''नही.....नही तो.....देखो कहां काँप रहा हूं'' अपने दोनों हाथों को जो सच में कंपकपा रहे होते हैं उनके आगे फैला देता हूं, फिर काँपते हाथों को देखते हुए बात बनाने की कोशिश करता हूँ।

''वह क्या है न दो रोज़ से कुछ खाया–पिया नही है न.....इसलिए..... शायद कमज़ोरी...!

''कमज़ोरी ही तो इन दंगों का कारण है सिंह साहब.......हुकूमत की कमज़ोरी, रहनुमाओं की कमज़ोरी, धार्मिक पेश्वाओं की कमज़ोरी, क़ौमी धारे की कमज़ोरी, चरित्र व सद्व्यवहार की कमज़ोरी! कमज़ोर तो सारा देश हो गया है सिंह साहब!! क्या किजिएगा? क्या खिलायेगा?कौन सी टानिक कारगर होगी?.....इनसानी ख़ून??अरे ख़ून तो ब्लड बैंकों की मिरास है, किन्तु अफसोस! इसे हमारे यहां गली–कूचों, सड़कों, गटरों में बहाया जा रहा है।'

मैं ख़ामोश सोचने लगता हूँ। रामचन्दर बाबू ठीक ही तो कह रहे हैं... ...कमज़ोरी ही दंगों का कारण है, यदि हुकूमत कमज़ोरी बरतने की बजाए कठोरता से पेश आती तो यक़िनन सत्ता की बिसात पर मस्जिद और मन्दिर को मोहरों की भांति इस्तेमाल करने वाले सियासी बाज़ीगरों की मात हो जाती। अफसोस! ऐसा न होकर मात मस्जिद की हुई जो एकता व अखंडता की बुलन्द और रोशन मिनार थी......नहीं नहीं !! मात तो मन्दिर की हुई है.......नही......शायद दोनों की!! क्योंकि ढ़ांचा तो एक ही था, बस नाम अलग–अलग थे, मस्जिद.......मन्दिर! यानी यह करतूत सियासत के उन अज्ञानी खिलाड़ियों की है, जो देश से एकता व अखंडता के गिरांडिल और छायादार पेड़ों को उखाड़ कर हिन्दुत्व की अमरबेलें लगाना चाहते हैं।

''सिंह साहब.....कहां खो गए भाई ?''

''आं.....हाँ!'' रामचन्दर बाबू की आवाज़ पर मेरी सोचों का तार टूट

जाता है।
"लगता है मेरी बे–सिर–पैर की बातों का कुछ अधिक ही असर ले लिया आपने?"
"नहीं नहीं....ऐसी बात नही है। वासत्व में एकता, अखंडता व हिन्दुत्व के चक्रव्यूह में उलझा हुआ था।"
"क्या! एकता–अखंडता व हिन्दुत्व!!!.....हुं....बकवास......सब बकवास हैं सिंह साहब.....एकदम बकवास! कोई अंतर नही है दोनों में.....ऐसे समझये एकही सिक्के के दो रूख़ हैं। वैसे भी अपने यहां एकता और अखंडता की दीवार घोशणाओं और नारों के कंधों पर खड़ी है, सोचिए भला ऐसी दिवार कितनी टिकाऊ और मज़बूत हो सकती है?यही कारण है जो इन्हें धार्मिकता व जातियता की धीमी से धीमी बयार भी गिरा देती है।"

बातों ही बातों में हम गली पार कर स्टेशन की ओर जाने वाली सड़क पर आजाते हैं, अभी इस सड़क पर चार–छः क़दम भी आगे नही बढ़े होते हैं कि पीछे से फायरिंग की आवाज़ गुँजती है। हम दोनों चौंक कर पलटते हैं, देखते हैं कि कुछ दूरी पर एक इन्स्पेक्टर हमारी ओर रिवाल्वर ताने खड़ा है और तीन बन्दूक़ धारी कांस्टेबल दौड़ते हूए आरहे हैं, इससे पहले कि वह हमारे निकट पहुँचते इन्स्पेक्टर मराठी भाशा में चिल्ला के कहता है।
"खैंचून आन दोगान ना" (दोनों को खींच कर ले आ)
देखते ही देखते कॉंस्टेबल हम दोनों को पकड़ के इन्स्पेक्टर के पास ले आते हैं। इन्स्पेक्टर पतलून की जेब से शराब की बोतल निकाल कर एक घोंट हलक़ में उंडेलता है। फिर हमें कुपित दृश्टि से देखते हूए डपट कर पुछता है।
"क्या रे माधर चो........किदर गयला था लफड़ा करने को ?"
उसके इस आचरण से मैं थर थर कांपने लगता हूँ किन्तु रामचन्दर बाबू पर इसका कोई प्रभाव नही पड़ता। वह निश्चिंत परन्तु चकित स्वर में कहते हैं।
"लफड़ा! कैसा लफड़ा!!"
इन्स्पेक्टर दोबारह शराब हलक़ में उँडेलने लगता है। अबकी ग़ट–ग़ट सारी शराब एक ही साँस में पी जाता है। ख़ाली बोतल एक ओर उछालते हुए लड़खड़ाते स्वर में पूछता है।

"तेरे को......लफ....ड़ा....नइ....मालूम ?"

"जी नही !"

"चूतिया.....बनाता......है....साला.....पुलिस को.....चूतिया बनाता है..... नाम बोल..."

"गुलाब सिंह" मारे घबराहट के मैं अपना नाम बता देता हूं। इन्स्पेक्टर मुझे डपटता है।

"तू चुप रे.....तेरे को.....पूछा...क्या ?साला....तू तो....थोबड़े सेइच भैया दिखता है"

फिर नशीली दृश्टि से एक कॉंस्टेबल की ओर देखते हुए आदेश देता है।

"शिन्दे इचा झड़ती काढुन घे" (शिन्दे इसकी तलाशी ले)

पल भर गंवाए बिना वह कॉंस्टेबल मेरी जेबों पर टूट पड़ता है और सारे रूपये निकाल कर अपनी जेब में ठूंस लेता है। इस दौरान दूसरा कॉंस्टेबल रामचन्दर बाबू को बन्दूक की बट से टहोका देते हुए कहता है। "खड़ा–खड़ा थोबड़ा क्या देखता है.....साब को नाम बोल"

उसकी इस हरकत से वह झुंझुला जाते हैं।

"आप लोग चाहते क्या हैं ? आखिर क्यों जानना चाहते हैं नाम ? क्या वास्ता है आप लोगों को मेरे नाम से ? क्या हम बदमाश, लुच्चे–लफंगे लगते हैं?या हम ही दंगाई हैं ?? साहब, अफसोस है मुझे, आपके इस शर्मनाक आचरण पर ! पुलिस तो........"

उनका वाक्य पुर्ण होने से पहले ही 'तड़ाख' इन्स्पेक्टर का एक भरपूर थप्पड़ उनके गाल पर पड़ता है।

"साला....माधर चो....पुलिस को गाली देता है" उसके थप्पड़ मारते ही तीनों कॉंस्टेबल भी उनपर टूट पड़ते हैं, और इस बे–दर्दी से मारते हैं कि वह बेसुध होकर गिर पड़ते हैं। इन्स्पेक्टर उन्हें बालों से पकड़ कर उठाते हुए कहता है। "अब बोल नाम"

एक आह के साथ बड़ी कठनाई से उनके मुख से निकलता है "इन्सान"

"इन्सान ! मंझे लांडिया...?" (इन्सान मतलब लांडिया?)

"होय साहेब.....मला तर आगोदरच कड़ला होता" (हां साहब....मैं तो पहले ही समझ गया था)

एक कांस्टेबल समर्थन करता है, फिर तीनों एक दूसरे को अर्थपुर्ण दृश्टि से देखते हैं....आँखों ही आँखों में कुछ इशारे होते हैं और

यकबारगी सब के सब उनपर लात, घूँसे और बन्दूक़ की बट बरसाने लगते हैं। ऐसा करते हूए वह इतने जुनूनी होजाते हैं कि हर लात...हर घूंसे पर उनके मुख से निकलता है "बोल जय श्रीराम..... बोल जय सिया राम....बोल जय महाराश्ट्र" और मारते–मारते लहूलुहान करदेते हैं। इस पर भी इन्स्पेक्टर को संतोश नही होता तो वह धांय–धांय दो राउंड फायर करदेता है। एक पैर पर दूसरा सीने पर! मैं झट वहां से जान बचाकर भाग खड़ा होता हूं।

पत्नी मुझे ख़ाली हाथ, हांफते–कांपते पसीने में तर देख कर प्रश्न की मूरत बन जाती है।

"क्या हुआ....आप इतने घबराए हुए क्यों हैं ?"

मैं कोई उत्तर दिए बिना धम से सोफे पर गिर पड़ता हूँ इसके बाद क्या होता है मुझे कुछ होश नही, हाँ ! होश होता है तो खुद को पलंगड़ी पर लिहाफ के भीतर पाता हूँ। नथनों में अमृत अंजन बाम की महक बसी होती है और कानों में टी–वी पर चल रहे समाचार की आवाज़ गूंजती है। गुनूदगी के कारण न्यूज़ रीडर के मुख से क्या अदा होरहा है कुछ सुन पाता हूं कुछ नही सुन पाता...... हां! समाचार के अंत में इतना ज़रूर सुनता हूं कि "आज प्रभात काल कर्फियू में दी गई ढ़ील के दौरान महानगर में कोई अप्रिय घटना नही घटी, केवल कालीना केम्पस के समीप अल्प संख्यकों की टोली ने एक व्यक्ति की गोली मार कर हत्या करदी"

"नहीऽऽऽऽ........यह झूट है" मैं चिल्ला पड़ता हूं किन्तु अफ़सोस ! शब्द अपना अस्तित्व खो देते हैं।

●●

